।। श्री स्वामी समर्थ ।।
।। जगतगुरु श्री कुमार स्वामी ।।
।। एकम ।।

मैं 'नाना' बोल रहा हूँ ....।

(श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर (चेंबूर- मुंबई) के संस्थापक एवं खेल महर्षि सुहास रामनाथ पाठारे जी की जीवनी)

(जीवन गाथा)

शब्दांकन

डॉ. रमेश यादव

प्रकाशक

शतरंग प्रकाशन

एस-43, विकासदीप बिल्डिंग,
द्वितीय तल, स्टेशन रोड, लखनऊ-226001

E-mail : Ltp284403@gmail.com, Mo: 8787093085

पुस्तक का नाम : **मैं 'नाना' बोल रहा हूँ.....।**

लेखक : **डॉ. रमेश यादव**

प्रकाशक
शतरंग प्रकाशन
एस-43, विकासदीप बिल्डिंग,
द्वितीय तल, स्टेशन रोड, लखनऊ-226001
Mo:8787093085
E-mail : Ltp284403@gmail.com

मुद्रकः
आर्यन डी. प्रेस
नई दिल्ली

प्रथम संस्करणः 2025

ISBN : 000-00-000000-0-0

© **डॉ. रमेश यादव, सुहास पाठारे**

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक/ लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की फोटो कॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

मूल्यः ₹ 300

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	मैं नाना बोल रहा हूँ...।	01
2.	प्रारंभिक जीवन एवं शिक्षा-दीक्षा	07
3.	स्वतंत्रता सेनानी – रामनाथ हरीराम पाठारे	10
4.	श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना	22
5.	विविध प्रतियोगिताओं में श्रीपवनपुत्र की उपलब्धियां	23
6.	पहला बाळंभट्ट दादा देवधर पुरस्कार प्राप्त	29
7.	मलखांब – एक प्राचीन भारतीय खेल	31
8.	आसन, जिमनास्टिक, एथलेटिक्स – खेल प्रकार	34
9.	विविध खेल प्रतियोगिताओं में मेरी सहभागिता	39
10.	गुलाब इंजीनियरिंग वर्क्स	44
11.	माताजी एवं पिताजी का स्वर्गवास	47
12.	रेवती महंत का योगदान	50
13.	विविध खेल संगठनों में मेरा पदभार	52
14.	देश के लिए मैंने क्या समर्पित किया ?	56
15.	विजया मेरी जीवन संगिनी बनी	58
16.	कुर्ला, ट्रांबे, माहूल, मानखुर्द का इलाका	62

17.	राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारे खिलाड़ी	69
18.	किड्स इक्विपमेंट्स	82
19.	बोया पेड़ बबुल का तो आम कहां से खाए...	84
20.	शहाजी राजे भोसले क्रीड़ा संकुल (अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स)	88
21.	कालाय तस्मै नमः	96
22.	D-80 गांवठान और मल्हार निवास के पुनर्विकास का मुद्दा	101
23.	घर हो अपना, साकार हुआ सपना	108
24.	देश-विदेश में हमारी यात्राएं	111
25.	कोविड-19 का आतंक	120
26.	अध्यात्म की ओर बढ़ते कदम	123
27.	तन, मन और जीवन के बीच संवाद	125
28.	विल (वसीयतनामा) बनाने का काम	128
29.	जो आया है सो जाएगा....	130
30.	2036 में ओलंपिक का आयोजन भारत में	133
31.	किस उम्र से बच्चों को जोड़ा जाए खेल से	141
32.	खेल के प्रति लोगों की मानसिकता	145
33.	खेल संबंधी मेरे कुछ सुझाव	153
34.	संस्मरण - 1 – अशोक नायगावकर	157
35.	संस्मरण - 2 – प्रदीप चेंबूरकर	159
36.	संस्मरण - 3 – दाताराम वाघे	178
37.	संस्मरण – 4 – प्रतिभा सराफ	186
38.	National sports policy 2025 (Govt.of India)	190

मैं 'नाना' बोल रहा हूँ .....।

नमस्कार, मैं 'नाना' उर्फ़ सुहास रामनाथ पाठारे, बोल रहा हूँ। 27 नवंबर 1939 को मेरा जन्म मुंबई के चेंबूर गांवठान (गांव) में हुआ। 'स्थिरम् सुखम् आसनम्' मेरे जीवन का मूल मंत्र रहा है। हम लोग, मतलब हमारे वंशज सोमवंशी क्षत्रीय पाठारे (SKP) पाचकळशी समाज से आते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे पूर्वजों का संबंध बारहवीं सदी से रामदेवराव यादव (दौलताबाद किला) और माहिम किला प्रशासन से रहा है। रामदेवराव यादव महाराज के दरबार में और सेना में हमारे समाज के कई लोगों ने विविध पदों पर महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान की हैं। कुछ लोगों ने तो सेनापति जैसे महत्वपूर्ण पदों की जिम्मेदारियां भी निभाई थीं। आततायी मुगलों के आक्रमण के बाद जब रामदेवराव यादव का साम्राज्य तथा उनकी सेना का विस्थापन हुआ, तब सेना एवं प्रशासन में कार्यरत हमारे समाज के लोग मुंबई, ठाणे तथा महाराष्ट्र के अन्य सुदूर भागों में आकर बस गए। यहीं से हमारी वंश परंपरा आगे बढ़ी। हमारी कई पीढ़ियों का पूरा जीवन मुंबई में गुजरा इसलिए अब हम पूर्णरूपेण मुंबईकर उर्फ़ चेंबूरकर हो गए हैं। मुंबई, दादर में वनमाळी सभागृह का निर्माण हमारे समाज बंधुओं ने समाज के उत्कर्ष के लिए किया था जो आज भी सेवारत है। हमारे वंशज बहुत पहले चेंबूर में आकर बस गए थे, जहां हमारे परिवार का विस्तार हुआ। उसी चेंबूर की गलियारों में मेरा बचपन गुजरा, जो आज मुंबई का काफी महंगा एवं सुविधा सम्पन्न उपनगर है। मगर जब मेरा जन्म हुआ तब ये महज एक गांव

था, जो खाड़ी और जंगल से घिरा था। लोग पशु पालन के साथ खेती, नमक बनाने एवं बेचने का व्यवसाय के साथ मत्स्य व्यवसाय किया करते थे। मेरे पिताजी रामनाथ पाठारे शिक्षा के साथ-साथ खेल प्रेमी भी थे। उनके ये संस्कार मुझे विरासत में मिले। आप लोग मेरे जिंदगी की इस दास्तां को भूली भटकी कहानी मान सकते हैं। मेरी पूरी जिंदगी शिक्षा जगत के साथ व्यायाम, आसन, (योग) मलखांब, बास्केट बॉल, स्विमिंग, जिमनास्टिक और एथलेटिक्स की साधना में गुजरी। खेल का नाम लेते ही व्यायाम से संबंधित एक श्लोक मुझे याद आ रहा है –

व्यायामात् लभते स्वास्थ्यं दीर्घायुष्यं बलं सुखं।
आरोग्यं परमं भाग्यं स्वास्थ्यं सर्वार्थसाधनम्॥

भावार्थ : व्यायाम से स्वास्थ्य, लम्बी आयु, बल और सुख की प्राप्ति होती है। निरोगी होना परम भाग्य है और अच्छे स्वास्थ्य से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

इस छोटे से श्लोक में व्यायाम की व्याख्या और जीवन में उसके महत्व की बात पूरी तरह से व्यक्त होती है। उसी का अनुष्ठान मैं अपनी इस जीवनी लेखन के माध्यम से करने जा रहा हूँ। मुझ जैसे खिलाड़ी, खेल प्रेमी एवं स्पोर्ट्स गुरु के लिए जीवनी (आत्मकथा) लिखना कितना कठिन काम था, इसे आज मैं महसूस कर रहा हूँ, क्योंकि मैं कोई लेखक या कलमकार तो हूँ नहीं। मैं ठहरा एक साधारण खिलाड़ी एवं खेल कार्यकर्ता...,। यह कला मुझे विरासत में अपने पिताजी से मिली। मेरी इस जीवनी में मेरे साथ समकालीन समय का पूरा प्रवाह है, खेल आख्यान है, तत्कालीन समय, समाज, परम्पराएं आदि का ताना बाना है। जीवन कभी ये सोचा नहीं था कि आगे चलकर मैं अपनी जीवनी (आत्मवृत्त) लिखूंगा। जीवनी लिखने लायक ऐसा कोई महान कार्य मैनें नहीं किया है। मगर यह निर्विवाद सत्य है कि खेल के प्रति जीवन में मैंने एक लंबी साधना, गहरे लगाव और पूरे मन से की है। अतः नई पीढ़ी के सामने कुछ मार्गदर्शक बातें, भारत में खेल व्यवस्था (तब और आज) को लेकर अपने अनुभव, आपबीती आदि को आप लोगों से

साझा करूं। बस इसी सार्थक उद्देश्य से आप लोगों से रू-ब-रू होने की यह कोशिश है। ओलंपिक में प्राप्त पदक (मेडल) तालिका पर गौर करें तो अन्य देशों की तुलना में भारत की स्थिति क्या है, यह चित्र स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए जीवन के उत्तरार्ध में जीवनी लिखने की साहस कर रहा हूँ। 2036 में भारत में ओलंपिक खेल महोत्सव आयोजित करने की घोषणा सरकार ने की है, इसलिए अपने विचार साझा करने से अपने आपको रोक नहीं पा रहा हूँ और भावुक भी हो रहा हूँ। अपने सीधे सरल जीवन की गहरी सरिता में डुबकी लगाते हुए मैं जिस निर्मलता और ताजगी से भर गया हूँ, उसे चाहकर भी पूरी तरह से साझा नहीं कर पा रहा हूँ। लगता है, मेरा मन, मेरी आत्मा थोड़ी और निर्मल हो गई है। आप लोगों को आश्चर्य हो रहा होगा कि एक स्पोर्ट्समन निर्मल मन की बात कर रहा है। जी हाँ, मेरा स्वभाव ही ऐसा रहा है।

भारत में व्यायाम एवं विविध प्रकार के शारीरिक गतिविधियों का इतिहास बहुत ही प्राचीन है। इस परंपरा में आसन (योग), कुश्ती, मलखांब, कसरत, करतब, नृत्य, खेल, युद्ध कला एवं अन्य शारीरिक गतिविधियों का समावेश है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में योग (आसन) का क्या स्थान है, इसे नए सिरे से कहने या लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारे प्राचीन वेद, ऋचाएं इस बारे में स्पष्ट रूप से अपना अभिमत व्यक्त करते हैं। कसरत (व्यायाम) आसन के कई हैं, जिसका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। व्यायाम और आसन से तात्पर्य-शारीरिक गतिविधि को योजनाबद्ध तरीके से संरचित करना है। इसे शरीर साधना भी कह सकते हैं, जो स्वास्थ की दृष्टि से आरोग्यं परमं भाग्यं स्वास्थ्यं सर्वार्थसाधनम् है। हमारे ऋषि, मुनियों, साधु संतों ने इस बात को बार-बार समाज मन पर विविध माध्यमों से बिम्बित किया है। मेरी ये पुस्तक जीवनवृत्त (जीवनी) कम और व्यायाम संबंधी अनुष्ठान अधिक है। व्यायाम से मेरा तात्पर्य आसन, मलखांब, जिमनास्टिक, बास्केट बॉल और एथलेटिक्स जैसे खेल प्रकारों से है। आजीवन मैंने इन खेलों की साधना की है, इसलिए आत्मवृत्त रूपी मेरी इस पुस्तक में भी उसी का जाप अधिक

होगा।

'मैं अपना आत्मवृत्त (जीवनी) लिखूँ' इस तरह का आग्रह जब मेरे मित्र एवं शुभचिंतक करने लगे, तब मैंने अपनी गुजरी जिंदगी पर चिंतन किया। आखिरकार खेल को लेकर सामाजिक प्रबोधन तथा जनजागृति की दृष्टि से जीवन के खट्टे-मीठे, तीखे, कड़वे अनुभवों को लिखने की मैंने मंशा बनाई, और इस पुस्तक को अंजाम देने की मेरी यह सार्थक कोशिश है। मुझ जैसे क्रीड़ा साधक के लिए ये काम इतना आसान नहीं था। जब दमखम था तब ये काम कई कारणों से संभव नहीं हो पाया। इसके पीछे कई वजहें भी थीं। मुख्यतः उम्र का तकाजा और संजीदे कलमकार की खोज। बहरहाल अपने इस संकल्प को साकार रूप देने के लिए कुछ परिचित लेखकों से सम्पर्क किया पर बात नहीं बनी।

इस समय अर्थात सन् 2025 में मेरी उम्र 86 साल की है। अब मैं बिना किसी सहारे के या अपने बलबूते पर कोई काम स्वतंत्र रूप से कर नहीं सकता, मगर मेरी इच्छाशक्ति और याददास्त आज भी मजबूत है। ऐसे में मेरे मित्र प्रमोद सावंत, जो जीवन के इस मुकाम पर सारथी बनकर मेरे साथ खड़े हैं और संकट मोचक के रूप में विविध समस्याओं का समाधान यथासम्भव, यथाशक्ति कर रहे हैं। उन्हीं की मदद से हिंदी के साहित्यकार डॉ. रमेश यादव जी से मेरा परिचय हुआ। वे हिंदी और मराठी भाषा के अच्छे जानकार हैं तथा पिछले कई वर्षों से दोनों भाषाओं के बीच सेतु का काम कर रहे हैं। उनके सामने जब इस पुस्तक लेखन का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने स्पोर्ट्स के क्षेत्र में मेरी तपस्या और उम्र को देखते हुए हिंदी में शब्दांकन करना उन्होंने स्वीकार किया। "हिंदी मेरी मातृभाषा है, और मराठी मेरी संस्कृति है। स्वतंत्र रूप से, बेहतर अंजाम के लिए हिंदी में लिखना मेरे ज्यादा सुविधाजनक होगा।" उनके इस निवेदन को हमने स्वीकार कर लिया, जो मेरे लिए परम सुख के समान था। उनके इस ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो पाऊँगा इसलिए शब्द रूप में ही सही, मैं उनके और प्रमोद सावंत के प्रति तहे दिल से कृतज्ञता व्यक्त कर रहा हूँ। इन दोनों ने

मुझे 'क्रीड़ा महर्षि' की उपमा देकर मुझे जो सम्मान दिया है वह मेरे लिए अतीव हर्ष का विषय है। इससे मुझे पद्म सम्मान प्राप्त होने की अनुभूति हो रही है। आगे संभव हो पाया तो मराठी में भी इसकी आवृत्ति निकालने की कोशिश रहेगी।

मेरी याददास्त तो ठीक-ठाक है, मगर जीवनी (आत्मवृत्त) लेखन के लिए सिलसिलेवार जिस रेकॉर्ड की जरूरत थी, उसका मेरे पास अभाव था। उस सर्व शक्तिमान के आशीर्वाद से इस उम्र में भी मैं घर में चल-फिर लेता हूँ, मगर बाहर निकलने के लिए किसी सहारे की जरूरत होती है। मन तो आज भी बहुत कुछ करने के लिए मचलता है, पर शरीर बेचारा लाचार है। मेरी यह स्थिति प्राकृतिक है, रगों में अब वो शक्ति नहीं रही। समय भले ही हाथ से फिसल गया हो, मगर मेरे हौसले आज भी बुलंद हैं। हर व्यक्ति की तरह मेरे जीवन में भी कई उतार-चढ़ाव आए। कई अच्छे, भले-बुरे अनुभव भी आए और उस तरह के लोग भी मिले। जीवन की इस पाठशाला में विद्यार्थियों को सिखाने के साथ-साथ मुझे भी बहुत कुछ सीखने को मिला। अपने इन्हीं अनुभवों को आप लोगों से साझा करने की मंशा दिल में हिलोर ले रही थी, इसलिए जब कभी कुछ याद आता तो, यथासमय उसे अपनी डायरी में नोट करता गया। जीवनी लेखन में आज वही डायरी काम आ रही है। इसलिए आज इस अवस्था में मैं आप मित्रों, शुभचिंतकों से मेरा निवेदन है कि यदि संभव हो तो हर व्यक्ति को अपनी डायरी जरूर लिखनी चाहिए। जीवन की इस संध्या छाया में, मैं बहुत कुछ सार्थक करने की स्थिति में नहीं हूँ बावजूद इसके अपनी डायरी को खंगालते हुए उसका आनंद ले रहा हूँ और जीवनी लेखन की हिम्मत कर रहा हूँ। एक प्रचलित कहावत है- 'जब जागो तब सबेरा।' इस पर यकीन करते हुए, अपने संकल्प को अंजाम तक पहुंचाने की मेरी यह सार्थक कोशिश है। पता नहीं क्यों, मुझे ये अनुभूति हो रही है कि - मेरी इस मंशा को मैं अंजाम नहीं दे रहा हूँ बल्कि कोई अदृश्य शक्ति मुझसे ये काम करवा रही है। बड़े बुजुर्गों का आशीर्वाद मेरे साथ है। तिथि, वार, समय, साल आदि जैसी बातें बारीकी से याद नहीं, मगर कुछ प्रमुख घटनाएं एवं चेहरे आज भी आंखों के सामने तैर रहे हैं, उन्हीं को

शब्दरूप देने की मेरी ये कोशिश लेखनिक रमेश यादव के माध्यम से साकार हो रही है। संभव है कि लेखन का क्रम ठीक ना हो, या बहुत कुछ छूट भी गया होगा, संदर्भ भी गलत हो सकते हैं, पुनरावृत्ति भी हो सकती है, मगर भावनाएं सच्ची हैं, इसलिए त्रुटियों के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। आप माई–बाप सुधी पाठकों से करबद्ध निवेदन है कि प्रस्तुत आत्मवृत्त रूपी इस पुस्तक में जो कुछ उपयोगी एवं सार्थक है उसे स्वीकार करें, जो अनावश्यक है उसे छोड़ दें। हिंदी के मशहूर शायर दुष्यंत जी के शब्दों में कहें तो -

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।"

जी हाँ मित्रों, मेरे जीवन में या मेरे पिताजी के जीवन में ये पंक्तियाँ बहुत सटीक बैठती हैं। मेरे ही नहीं, बल्कि मुझ जैसे तमाम लोगों के जीवन में कई सुखद, दुखद घटनाएं, स्मृतियां एवं पीड़ाएं हिलोर लेती रहती हैँ। इन्हें शब्दों में बांधना, या पचा पाना बहुत मुश्किल होता है। बावजूद इसके कई लोग, एक संकल्प एवं मिशन के तहत हर मुश्किलों का सामना करते हुए जीवन में आगे बढ़ते रहते हैं। मैं भी अपने संकल्प एवं संस्कारों के तहत कर्तव्य पथ पर इसी तरह आगे बढ़ता रहा और आज इस मुकाम पर खड़ा हूँ, जिसकी कभी कल्पना नहीं की थी। कई तरह की बाधाएं एवं मुश्किलें आईं और चलीं भी गईं। बिना किसी अपेक्षा और निस्वार्थ भाव से मैं कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ता रहा। मराठी में एक कहावत है –

'सामाजिक कार्य म्हणजे घरचे खाऊन, लष्कराचे भाकऱ्या भाजणे।'

तात्पर्य-सामाजिक कार्य करने का मतलब है, अपने घर का खाकर, दुनियादारी करो और लोगों के ताने भी सुनो।

2

प्रारंभिक जीवन एवं शिक्षा-दीक्षा

मेरा जन्म 1939 अर्थात स्वतंत्रता के पूर्व काल का है। स्वतंत्रता के बाद देश एक नई शुरुआत के साथ आगे बढ़ रहा था। सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक और आर्थिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। देश के सामने गरीबी, बेरोजगारी और बुनियादी ढांचे की कमी जैसी तमाम चुनौतियां थीं। बावजूद इसके लोगों में देशभक्ति, संस्कृति और समाजसेवा का जुनून था। तब आज की तरह मनोरंजन के इतने साधन नहीं थे। बलोपासना जीवन का महत्वपूर्ण घटक माना जाता था। बलोपासना के कई प्रकार हैं, जिसमें विविध प्रकार के खेलों का भी समावेश होता है। लोगों में सामाजिकता का भाव अधिक था। मेरे पिताजी रामनाथ पाठारे, स्वतंत्रता सेनानी एवं सामाजिक कार्यकर्ता थे। उन्हें व्यायाम, आसन और खेलों से लगाव था। हम दो भाई अर्थात मैं सुहास और छोटा भाई अनिल। पिताजी के संस्कार हम पर भी हुए। बचपन से ही मुझमें आसन और व्यायाम के प्रति लगाव अधिक था और मैं उसी धारा में बहता चला गया। आसपास का माहौल भी उसी प्रकार का था। अतः सामाजिकता, व्यायाम, आसन (योग) एवं मलखांब की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा मुझे मेरे पिताजी से मिली। वही मेरे पहले गुरु थे। मेरे पिताजी कुल पाँच भाई-बहन थे। परिवार का मूल ढांचा वही रहा, पर समय के साथ वह कुछ बदलता भी गया। मेरी माताजी का नाम गुलाब पाठारे था, जो बेहद ही सहिष्णु एवं समर्पित स्वभाव की घरेलू महिला थीं।

मेरी प्राथमिक शिक्षा पहली से सातवी तक चेंबूर नाका स्थित लोकल बोर्ड के बिगारी (प्री प्रायमरी) स्कूल में हुई। तब यह स्कूल ग्राम पंचायत के अंतर्गत कार्यरत था। तब मराठी माध्यम या अन्य भाषाओं की बजाय अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की संख्या अधिक थी, जिन्हें अंग्रेजों ने बनाया था। हल्का-सा मुझे याद आ रहा है कि तब 6वीं कक्षा में मेरी फीस डेढ़ रुपए तथा 7वीं में ढ़ाई रुपए थी। आगे 8वीं, 9वीं अर्थात माध्यमिक शिक्षा सायन के 'डी.एस. हाईस्कूल' हुई। मैं 9वीं में मैं फेल हो गया था, इसलिए आगे की शिक्षा अर्थात 9वीं, 10वीं और 11वीं (1955 से 1958 तक -ओल्ड एस.एस.सी. लोकल बोर्ड) तक की शिक्षा चेंबूर नाका स्थित 'चेंबूर हाईस्कूल' में हुई। इस हाईस्कूल के निर्माण में चेंबूर के सामाजिक कार्यकर्ताओं और रामनाथ पाठारे ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। तब स्कूलों में अन्य विषयों के साथ शिवकालीन (छत्रपति शिवाजी महाराज) मोडी भाषा और लिपि भी पढ़ाई जाती थी जो बोरू से लिखी जाती थी। अब यह भाषा तथा लिपि लुप्त हो गई है, मगर इसका महत्व कम नहीं हुआ है। क्योंकि आज भी महाराष्ट्र के ग्रामीण क्षेत्रों में घर के और खेती के पुराने सरकारी दस्तावेज इसी लिपि में मौजूद हैं। इस भाषा की जानकारी के अभाव में आज लोगों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मेरी पीढ़ी के कुछ लोग इस लिपि को थोड़ा बहुत जानते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मोडी लिपि की शिक्षा स्कूलों में भले ही बंद हो गई है मगर इसकी जरूरत खत्म नहीं हुई है।

जब मैं कुछ समझदार हुआ तो व्यायामशाला, आसन, और मलखांब जैसे कसरती खेलों से जुड़ गया। मलखांब का समावेश हमारे प्राचीन एवं परंपरागत देशी खेलों में होता है। इसके अलावा कुश्ती, भाला फेंक, गोला फेंक, खो-खो, कबड्डी, लेझिम, दौड़ तथा युद्ध नीति से सम्बंधित खेल काफी प्रचलित खेल थे। इतिहास के पन्नों से गुजरते हुए इन खेलों के महत्व को जाना जा सकता है। मलखांब एक प्रचलित देशी खेल था इसलिए मेरी प्राथमिकता इस खेल के प्रति अधिक रही, क्योंकि मेरे आसपास उसी तरह का माहौल था। मुगल शासन, अंग्रेजी शासन, शिवाजी महाराज और पेशवाई काल में इस खेल के लोकप्रियता की जानकारी मिलती है, जो

हमारी संस्कृति का प्रतीक भी है। पेशवे काल में पारंपरिक खेल के रूप में मलखांब को विशेष पहचान मिली। इस खेल का उगम 12 वीं सदीं से माना जाता है। मलखांब खेल के बारे में विस्तृत जानकारी हम आगे देंगे, मगर उससे पहले मैं अपने पिताजी (स्वतंत्रता सेनानी तथा सामाजिक कार्यकर्ता- रामनाथ हरीराम पाठारे) के बारे में बताना चाहूँगा।

3

स्वतंत्रता सेनानी- रामनाथ हरीराम पाठारे

मेरे पिताजी रामनाथ हरीराम पाठारे जी स्वतंत्रता सेनानी एवं चर्चित सामाजिक कार्यकर्ता थे। सामाजिक कार्यों के कारण चेंबूर एवं आसपास के इलाकों में उनकी खास पहचान थी, इसलिए लोग उनका काफी सम्मान भी करते थे। सिर्फ मेरे ही नहीं बल्कि कई लोगों के लिए वे आदर्श व्यक्तित्व थे। वे मेरे प्रथम गुरु एवं मार्गदर्शक थे, अतः मेरे मन में वंदना के भाव प्रस्फुटित हो रहे हैं -

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणम त्वमेव, त्वमेव सर्वमम देव देवः।।

भावार्थ- तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही बन्धु हो, तुम ही सखा हो, तुम ही विद्या हो, तुम ही धन हो। हे देवताओं के देव, तुम ही मेरा सब कुछ हो।

स्वतंत्रता सेनानी का मतलब क्या होता है ? आजादी की जंग में उनकी क्या भूमिका थी ? देश आजाद होने के बाद उन्हें क्या मिला ? उनके परिवारों की आज क्या स्थिति है ? ऐसे कई प्रश्न आप लोगों के जेहन में उठ रहे होंगे, मेरे मन में भी ये प्रश्न उठते रहे हैं, जो बिल्कुल स्वाभाविक है। स्वतंत्रता सेनानी की व्याख्या मैं यहां नहीं करना चाहता। आप सभी इस शब्द से वाकिफ होंगे, मगर सरल शब्दों कहें तो आजादी के जंग में जिन्होंने अंग्रेजों की लाठियां खाई, नारे लगाए, आंदोलन किया, अपना खून बहाया, आंदोलनकारियों के साथ झंडा लहराया, जेल गए, कार्यकर्ता के रूप में गुप्त

रूप से काम करते रहे या फिर देश के लिए शहीद हुए, ऐसे कई तरह के लोग स्वतंत्रता सेनानी की श्रेणी में आते हैं। मेरे पिताजी स्वतंत्रता सेनानी थे, इस बात का अभिमान हमें तब भी था और आज भी है। उनका जन्म 10 मई, 1911 को मुंबई चेंबूर में हुआ था। तब चेंबूर एक गांव था, जिसके आस-पास खाड़ियां थीं। लोग नमक की खेती करते थे। पिताजी की माध्यमिक तक की शिक्षा दादर के किंग जॉर्ज हाईस्कूल (राजा शिवाजी विद्यालय) में हुई। तब हर महत्वपूर्ण काम के लिए चेंबूर वासियों को कुर्ला, सायन या दादर तक जाना पड़ता था। 1954 तक चेंबूर से कुर्ला या दादर तक जाने के लिए आज की तरह लोकल ट्रेन की सुविधा नहीं थी। चेंबूर से कुर्ला तक लोगों को पैदल या सड़क मार्ग से जाना पड़ता था। कुर्ला पहुंचने के बाद लोकल ट्रेन मिलती थी और वहां से लोग आगे की यात्रा करते थे। मुझे याद है गणेशोत्सव के दौरान गणपति की मूर्ति लाने के लिए हमें दादर-सायन तक जाना पड़ता था। तब महीने भर का राशन भरने के लिए हम काका के मील में अर्थात लालबाग तक जाते थे। मुझे याद है तब चेंबूर में मराठी माध्यम का एक भी स्कूल नहीं था। इसकी कमी लोगों को खल रही थी। अतः पिताजी एवं उनके समकक्ष सामाजिक कार्यकर्ता इस दिशा में लगातार सरकारी स्तर पर प्रयास कर रहे थे, जो चेंबूर हाईस्कूल के रूप में 1954 में उनका सपना साकार हुआ।

तत्कालीन स्थितियों के अनुसार हमारे दादाजी हरीराम पाठारे को 18 संताने हुईं, जिनमें से सिर्फ पांच जीवित रहे (तीन भाई और दो बहनें)। शेष समय के साथ ईश्वर को प्यारे हो गए। वह संयुक्त परिवार का दौर हुआ करता था, अर्थात एक परिवार में कम से कम 10 से 15 सदस्य हुआ करते थे। हमारा भी संयुक्त परिवार था- काका–काकी, चाचा–चाची उनके बच्चे आदि सभी पास-पड़ोस में चेंबूर गांवठान (गांव) स्थित श्री मल्हार निवास में रहते थे। हमारा 'श्रीमल्हार निवास' बिल्कुल गांव जैसा ही खपरैला मकान था। उसमें पहले कुल 13 कमरे थे। साल 1935 में दादाजी ने और 1954 में पिताजी ने इसका रिनोवेशन किया। तत्पश्चात श्रीमल्हार निवास 22 कमरों का एक बड़ा आवास बन गया। इसकी बनावट कोंकण के घरो जैसी ही है।

घर के सामने बड़ा-सा आंगन और पीछे की ओर तुलसी वृंदावन था। आस-पास काफी पेड़-पौधे थे, जिससे हरियाली का माहौल था। घर में हमेशा अनाज की बोरियां भरी रहती थीं। संक्षेप में कहें तो परिवार बड़ा था और एकत्र कुटुंब पद्धति में हम पास्- पड़ोस में ही रहते थे। महत्वपूर्ण कामों के लिए या बाजार हाट के लिए हम लोगों को दादर तक जाना पड़ता था। आज की तरह चेंबूर में तब इतनी सुख सुविधाएं बाजार-हाट आदि नहीं थे। बावजूद इसके वो सुकून के दिन थे, लोगों के जीवन में इतना तनाव नहीं था, जितना आज है। अपनी प्रारंभिक स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद पिताजी ने अपने आपको सामाजिक कार्यों में झोंक दिया। क्षेत्र का विकास होना चाहिए यह उनका मुख्य ध्येय था, साथ ही वे स्वदेशी के भी पक्के समर्थक थे। उनसे मिलने और मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए लोग दूर-दूर से आया करते थे। इस कार्य में उनके कई साथी भी उनके साथ थे। 1936 से पिताजी 'परस्पर सहाय्यक संघ' नामक व्यायाम शाला, चेंबूर में चलाते थे, जिसके वे संस्थापक सदस्य थे। संघ का अपना एक बैंड पथक भी था। किन्हीं कारणों से जब यह संस्था बंद हो गई तब 1963 में पिताजी ने श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना की।

पिताजी का व्यक्तित्व बड़ा रोबदार था। हट्टे-कट्टे, गौर वर्ण, गोल चेहरा, उस पर शोभित मूंछे, लंबी–चौड़ी कद काठी वाले पिताजी हमेशा खादी का सफेद बुशर्ट एवं पैंट पहनते थे। उनकी वाणी ओजस्वी, धारदार और प्रभावशाली थी। पूरे इलाके में उनका दबदबा था। स्वतंत्रता सेनानी और एक सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते लोग आदर से उन्हें 'दादा' नाम से संबोधित करते थे। परिवार के छोटे-बड़े सदस्य भी उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। मेरी माताजी गुलाब रामनाथ पाठारे सहिष्णु, परोपकारी, धार्मिक एवं सरल सहज स्वभाव की घरेलू महिला थीं। परिवार को एक सूत्र में बांधे रखने में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। उनकी शिक्षा वर्नाकुलर फाइनल तक हुई थी तथा उनका मायका दादर के खांड़के बिल्डिंग में था। अतः दादर में हमारा आना-जाना लगा रहता था।

1942 में गांधीजी द्वारा चलाए गए 'चले जाओ' आंदोलन में पिताजी ने सैकड़ों कार्यकर्ताओं के साथ मुंबई में आंदोलन किया था, जिससे उनके प्रति अंग्रेजों में काफी रोष था। इसके चलते पुलिस वाले उनके साथ घर वालों को भी परेशान करते थे। देश की आजादी की गतिविधियों में शामिल होने के नाते अंग्रेजी प्रशासन की पुलिस समय- बेसमय पिताजी को खोजते हुए हमारे घर आ जाती थी। हमारे दादाजी हरीराम पाठारे जो सरकारी नौकरी में थे, इसलिए वे पुलिस से कह देते थे कि- 'रामनाथ अब यहां नहीं रहता, उसे हमने घर से बाहर निकाल दिया है।' अपने सामाजिक कार्यों के लिए तथा कट्टर गांधीवादी नेता के रूप में क्षेत्र में पिताजी की एक अलग पहचान थी। बाहर से वे जितने कठोर नजर आते थे, भीतर से उतने ही मुलायम और दयालु थे। वे अपने उसूलों के पक्के थे। उनके साथ विठ्ठल नारायण पुरव, नारायणराव आचार्य, केशव करंबेळकर, नारायण लक्ष्मण लाड और म्हात्रे जैसे कई अन्य कार्यकर्ता भी स्वतंत्रता संग्राम में शामिल थे। इनमें से पाँच लोग तो जेल भी गए थे। पिताजी (रामनाथ पाठारे) को भी दो वर्षों तक विसापुर कारावास में रखा गया था। वे स्वदेशी का प्रचार प्रसार करते थे और स्वदेशी की दुकान भी चलाते थे। गांधी-नेहरू एवं अन्य आजादी के नेताओं की चिट्ठियां या संदेश आंदोनकारियों तक पहुंचाने का काम गुप्त रूप से करते थे। इसके लिए अकसर वे साइकिल से बोरीवली तक जाते थे। रास्ते में कभी साइकिल का टायर पंचर हो जाता तो टायर में पैरा (पेंडा) भरकर आगे बढ़ते थे और अपनी जिम्मेदारी को निष्ठा से निभाते थे।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी एक बार चेंबूर आए थे, तब चेंबूर में पिताजी ने काँग्रेस सेवादल के कार्यकर्ता डॉ. हर्डीकर के साथ उनका जोरदार स्वागत किया था। साथ में आजादी के जंग में शामिल कई आंदोलनकारी कार्यकर्ता भी थे। 15 अगस्त 1947 को देश जब आजाद हुआ तो हमारे श्रीमल्हार निवास में जश्न का माहौल था। पूरे घर-आंगन में लगभग 200 दीप जलाकर आजादी का उत्सव हमने मनाया था। इसके विपरीत जब गांधीजी के देहांत की खबर आई तब घर में सन्नाटा छा गया था। उस वर्ष हमने घर में दिवाली

नहीं मनाई। पिताजी सच्चाई के पथ पर चलने वाले पक्के गांधीवादी कार्यकर्ता थे। व्यायामशाला और राष्ट्रीय स्कूल से जुड़े लोग उन्हें 'मास्तर' नाम से संबोधित करते थे। उस दौर में अधिकांश स्कूल अंग्रेजों द्वारा बनाए गए थे, जो अंग्रेजी माध्यम के थे। सामाजिक कार्यकर्ता और आम लोग चाहते थे कि बच्चे अंग्रेजों के स्कूल में ना जाएं। इसके बदले मराठी स्कूलों में जाएं, मगर तब मराठी माध्यम के स्कूलों की संख्या नहीं के बराबर थी। हमारे भारतीय शासकों द्वारा जो स्कूल बनाए गए थे उन स्कूलों को राष्ट्रीय स्कूल भी कहा जाता था।

देश आजाद होने के बाद चारों ओर धीरे-धीरे विकास की लहर रफ़्तार पकड़ रही थी। मुंबई में भी सड़कों का जाल बिछ रहा था। सायन से तुर्भे द्वीप तक जो लंबी सड़क बनी थी, उसके नामकरण को लेकर जब चर्चा छिड़ी तो एकमत से सामाजिक कार्यकर्ता वि.ना. पुरव के नाम पर उस सड़क का नामकरण किया गया। इसी मार्ग से जुड़ा एक अविकसित, आरक्षित भूखंड चेंबूर नाका पर था। इस जमीन पर मराठी स्कूल बनाया जाना चाहिए, ऐसा लोगों का मत था। इसलिए क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ताओं ने प्रशासन से काफी पत्राचार एवं सम्बंधित अधिकारियों से मुलाकात किया। लोगों की भावनाओं और प्रयासों को देखते हुए स्कूल बनाने की मंजूरी प्रशासन द्वारा मिल गई। मगर स्कूल बनाना इतना आसान काम नहीं था, बावजूद इसके तबके सामाजिक कार्यकर्ताओं में जोश था, और हिम्मत भी थी। आखिरकार स्कूल बनाने की प्रक्रिया आरंभ हुई। चेंबूर एक ऐसा इलाका था जहां महाराष्ट्रीयन लोगों की संख्या अधिक थी और अधिकांश लोग सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक भी थे। कोल्हापुर के राज परिवार से आए विशाल गडकर अर्थात भ. मा. पंत सर, मेरे पिताजी रामनाथ पाठारे, भाऊ फाटक, पुरव, जसवंत बाग, भाऊराव चेंबूरकर, नारायण गजानन आचार्य, के. ए. करंबेळकर, नारायण लक्ष्मण लाड़ जैसे कार्यकर्ताओं ने स्कूल को बनवाने की प्रक्रिया में अग्रणी भूमिका निभाई। सबसे पहले 1946 में 'चेंबूर एज्युकेशन सोसायटी' की स्थापना की गई। इसके अंतर्गत 1946 से 'चेंबूर हाईस्कूल' के निर्माण का कार्य

सामाजिक कार्यकर्ता वि. ना. पुरव' के नेतृत्व में आरंभ हुआ। अंततः 1954 में चेंबूर में पहला मराठी माध्यम का स्कूल 'चेंबूर हाईस्कूल' के नाम से बना। पिताजी भी इस स्कूल के संस्थापक सदस्य थे। तत्पश्चात स्कूल के प्रांगण में खेल एवं व्यायाम के लिए बड़ा मैदान बनाने की प्रक्रिया आरंभ हुई। खेल एवं व्यायाम से संबंधित गतिविधियों को आरंभ करने में पिताजी ने प्रमुख भूमिका निभाई। दरअसल चेंबूर हाईस्कूल से लगी हुई एक पहाड़ी थी। तब हम छोटे बच्चे खेल-खेल में उस पहाड़ी पर चढ़ जाते थे। पहाड़ी पर खड़े होकर सामने देखते तो मानखुर्द के उस पार की खाड़ी में समुद्री जहाजें दिखाई देती थीं। खाड़ी का दृश्य मनोरम लगता था क्योंकि उसके चारों ओर हरा-भरा जंगल था। स्कूल के प्रांगण में मैदान बनाने के लिए उस पहाड़ी को खोदकर सपाट भूमि बनाना आवश्यक था। बहरहाल जब मैदान बनाने की योजना बनी तो विद्यार्थियों, शिक्षकों और क्षेत्र के लोगों ने मिलकर कई दिनों तक कठोर श्रमदान किया। इसी कठोर श्रमदान से स्कूल के प्रांगण में एक बड़े से मैदान का निर्माण किया गया। कालांतर में यही मैदान चेंबूर का शान बना। इसके लिए पिताजी और अन्य कई सामाजिक कार्यकर्ताओं ने काफी दौड़-धूप और मेहनत की। विषम परिस्थितियों पर मात करते हुए अपनी कड़ी मेहनत एवं लगन के बल पर तब के सामाजिक कार्यकर्ता चेंबूर को नया रूप दे रहे थे।

चेंबूर हाईस्कूल का जब निर्माण हो रहा था तब साईट पर काम करने वाला इंजीनियर किसी कारण से काम बीच में छोड़कर चला गया। मगर हिम्मत न हारते हुए पिताजी ने बतौर आर्किटेक स्कूल की इमारत का काम पूरा किया। तब घाणेकर स्कूल के हेड मास्टर थे, उनके साथ भ. मा. पंत तथा भाऊ फाटक भी सहायक के रूप में स्कूल का काम-काज देखते थे। घाणेकर की अनुपस्थिति में पंत सर एवं पिताजी स्कूल का प्रशासकीय काम-काज संभालते थे। पिताजी अकसर युवाओं को नौकरी करने की बजाय अपना खुद का व्यवसाय शुरू करने का सलाह देते थे और जितना संभव हो पाता, उतना लोगों की मदद भी करते थे।

चेंबूर हाईस्कूल बन जाने के बाद शिक्षा के साथ-साथ मैदान में बास्केटबॉल, वॉलीबॉल, कबड्डी, खो-खो जैसे कई मैदानी खेल पंत सर के नेतृत्व में आरंभ किए गए। पंत सर भी मेरे पिताजी की तरह सच्चे खेल प्रेमी थे। खेल के प्रति लोगों को आकर्षित करने के लिए तथा परचा-प्रसार के लिए प्रारंभ में कई वर्षों तक खेल महोत्सवों का आयोजन किया गया। इससे चेंबूर का नाम मुंबई और पूरे महाराष्ट्र में फैल गया। खेल महोत्सव में सहभागी होने के लिए दूर-दूर से कई टीम एवं हजारों खिलाड़ी आते थे। कुछ वर्षों में ही चेंबूर का खेल महोत्सव लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र बन गया था। दर्शकों एवं खेल प्रेमियों के लिए यह एक बड़ा इवेंट हुआ करता था। इसमें शामिल होने के लिए दूसरे राज्यों से भी बड़ी संख्या में खेल प्रेमी एवं खिलाड़ी आते थे।धीरे-धीरे इसी तर्ज पर अन्य कई संस्थाओं द्वारा विविध जगहों पर इस तरह के खेल महोत्सव होने लगे। यहां तक कि स्कूल-कॉलेजों में भी इस तरह के खेल महोत्सव होने लगे, जिससे विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में उत्साह और उमंग का वातावरण बनने लगा। महिला खिलाड़ियों की बढ़ती संख्या इसका सकारात्मक पक्ष था।

अंग्रेजों के शासन काल में पूरे देश में कॉन्वेंट एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की भरमार थी। चेंबूर में भी यही स्थिति थी। ऐसे में स्वदेशी स्कूल एवं खादी ग्रामोद्योग के प्रचार-प्रसार का काम पिताजी एवं ना. ल. लाड मास्टर जैसे कई कार्यकर्ता किया करते थे। स्वदेशी स्कूल चलाना तत्कालीन समय की जरूरत थी। लाड मास्टर इस काम में अग्रणी पर थे। स्वदेशी आंदोलन में जब लाड मास्टर को जेल जाना पड़ा तो उस काम को पिताजी ने आगे बढ़ाया। चेंबूर हाईस्कूल की सफलता के बाद पिताजी, करंबेळकर, चेंबूरकर जैसे अन्य कई सामाजिक कार्यकर्ताओं ने चेंबूर जिमखाना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिमखाना निर्माण का कार्य बतौर आर्किटेक पिताजी की देखरेख में हुआ। जिमखाना के वे आजीवन सदस्य थे। इसके बाद लोकमान्य टिळक की 1920 में मृत्यु हो गई। उनके सम्मान में चेंबूर नाका पर 'लोकमान्य टिळक लायब्ररी' की स्थापना की गई, जिसमें चेंबूरकर, आचार्य, आदि के साथ पिताजी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पिताजी पेशे से आर्किटेक नहीं थे मगर उन्होंने इसका गहन अध्ययन किया था और खासा अनुभव भी प्राप्त किया था। दरअसल कुछ वर्षों पहले उन्होंने फोर्ट में शेख नामक एक व्यक्ति के फर्म में ड्राफ्टसमन की नौकरी की थी। अपने इसी अनुभव के आधार पर वे लाईसेंस धारी आर्किटेक तथा प्लंबर बन गए थे। अपने इन्हीं अनुभवों के बल पर वे क्षेत्र में आर्किटेक (वास्तुकार) के रूप में काम करने लगे। हमारे श्रीमल्हार निवास के पुनर्निर्माण का भी नक्शा भी पिताजी ने खुद बनाया था। पूरे चेंबूर एवं गांवठान का नक्शा भी उनके पास था।

तत्कालीन समय में चेंबूर के विकास को लेकर जो गतिविधियां हो रही थीं उसका साक्षी हमारा पुस्तैनी मकान 'श्रीमल्हार निवास' हुआ करता था। चेंबूर हाईस्कूल पूर्व विद्यार्थी संघ, पवनपुत्र जैसी कई महत्वपूर्ण संस्थाओं की बैठकें और चर्चाएं हमारे इसी घर में हुआ करती थीं। तब अपने देश, समाज, नगर के लिए कुछ कर गुजरने का जुनून लोगों में हुआ करता था। आजादी के क्रांतिकारियों से प्रेरित लोगों में देश सेवा, सामाज सेवा का जज्बा सिर चढ़कर बोलता था। हर गली-मोहल्ले, नुक्कड़ पर एखाध व्यायामशाला, बैंड पथक, लेझिम पथक, क्रीड़ा संस्था, नाट्य संस्था आदि का फलक जरूर देखने को मिलता था। युवाओं में लाठी-काठी, व्यायाम और बॉडी बिल्डिंग का शौक हुआ करता था। वरली, दादर- नायगांव जैसे जगहों पर कुश्तियों के दंगल हुआ करते थे। मराठी लोककलाओं और तमाशा के 'शो' मुंबई के कामगार क्षेत्रों में खूब हुआ करते थे। तमाशा के साथ उत्सवों के दौरान वीर रस से प्रेरित पोवाड़ों के गायन का कार्यक्रम शाहीरों द्वारा प्रस्तुत किए जाते थे। पोवाड़ा गीत ओजपूर्ण होते थे जो लोगों में रोमांच पैदा करते थे और लोगों को प्रेरणा भी मिलती थी। तब शाहीरी कला पथक, सामाजिक, ऐतिहासिक नाटक तथा लोकनाट्य प्रस्तुत करने वाली संस्थाओं की भरमार थी। गोंधळ, नमन, भारूड़, भजन, जत्रा, आदि का प्रचलन अधिक था।

पिताजी शिक्षा (स्कूल) के साथ-साथ व्यायामशाला, पुस्तकालय, गणेशोत्सव, भूलिंगेश्वर देवालय ट्रस्ट आदि गतिविधियों से भी जुड़े थे।

उत्सवों के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रमों और खेल महोत्सव के जैसे कार्यक्रमों के आयोजन में सक्रियता से जुड़े रहते थे। पिकेटिंग (दारू बंदी) के साथ मलखांब, रोमन रिंग्ज, आसन आदि का प्रशिक्षण भी देते थे। तब लड़कियां एवं महिलाएं आज की तरह इतनी मुखर नहीं थीं, इसलिए लड़कियों को सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सहभागी होने के लिए वे प्रेरित करते थे। उत्सवों के दौरान लड़कियां विविध प्रकार के आसन और मलखांब खेल प्रस्तुत करती थीं। पिताजी द्वारा स्थापित 'परस्पर सहाय्यक संघ' का अपना बैंड पथक था जिसका काम स्व. भोजने और स्व. मनोहर मास्टर देखते थे। बैंड पथक के लिए आवश्यक साधन सामग्री उन लोगों ने वाड़वली से प्राप्त की थी। अपनी आजीविका चलाने के लिए पिताजी ने आरंभ में कई तरह के छोटे–बड़े काम किए। आगे चलकर वे रोटरी क्लब ऑफ चेंबूर के फाउंडर मेम्बर बने। रोटरी क्लब के माध्यम से उन्होंने वयस्कों के लिए प्रौढ़ शिक्षा के क्लास चलाए और इसके लिए आवश्यक सामग्री रोटरी क्लब के माध्यम से उपलब्ध कराया। सामाजिक कामों के लिए आवश्यक धन कई बार वे खुद अपनी जेब से करते थे। स्वतंत्रता सेनानी होने के बावजूद जब उन्हें केंद्र या राज्य सरकार द्वारा काफी प्रयासों के बावजूद भी व्यायामशाला के लिए स्वतंत्र रूप से जगह नहीं मिली तो वे बहुत दुखी हुए। आखिर में हिम्मत न हारते हुए उन्होंने अपनी खुद की जगह में 'श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर' की स्थापना 1963 में की, जिसका जिक्र ऊपर किया गया है। पिताजी कट्टर गांधी भक्त थे, इसलिए प्रतिदिन घंटे- डेढ़ घंटे चरखा पर सूत कातते थे और अन्य लोगों को भी इस काम के लिए प्रेरित करते थे।

मेरे दादाजी हरीराम पाठारे उस समय के मैट्रिक पास थे। घाटकोपर में सरकारी ट्रेजरी वे नौकरी करते थे। वर्तमान में जो इलाका तिलक नगर कहलाता है, वह पहले एक खाड़ी थी, जिसके वे मालिक हुआ करते थे। दादाजी ड्यूटी खत्म करके रोज रात दो बजे के आस-पास घर लौटते थे, घर लौटते समय ट्रेजरी की कॅश भी साथ ले आते थे। ये उनके नौकरी की जिम्मेदारी थी। लगभग दो हजार रुपयों की थैली लेकर घाटकोपर से चेंबूर

गांवठान तक वे पैदल आते थे। लोग कहते हैं कि तब घाटोबा (ग्राम देवता) एक हाथ में डंडा और दूसरे हाथ में लालटेन लेकर सुरक्षा की दृष्टि से लोगों को चेंबूर की सीमा तक पहुंचाने आते थे। उस जमाने में भी खूब चोर–उचक्के हुआ करते थे। पर सुरक्षा की दृष्टि से कॅश घर ले आना दादाजी की मजबूरी थी। वे अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत और निडर थे। तब लोगों में आर्थिक संपन्नता एवं सुख सुविधाएं इतनी अधिक नहीं थीं, जितनी आज हैं। दादाजी का घास काटने का कारोबार भी था और उनकी सात जहाजें खाड़ी में चलती थी। मगर एक बार ऐसी विपदा आई कि उनकी सातों जहाजें रातो रात डूब गईं, जिससे घर की आर्थिक स्थिति डगमगा गई और दादाजी को अपना पुस्तैनी मकान मारवाड़ी के पास गिरवी रखना पड़ा थ। एक लम्बे समय के बाद 1946 में पिताजी ने उस घर को छुड़वाया, जो हमारे परिवार के लिए बेहद खुशी का अवसर था।

मुझे याद आ रहा है कि स्वतंत्रता पूर्व काल में अमरावती के हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल द्वारा व्यायाम से संबंधित शिविरों का आयोजन नियमित रूप से बोरीवली में किया जाता था, जिसमें पिताजी कई वर्षों तक सहभागिता करते रहे। इसका लाभ उन्हें प्रशिक्षण के दौरान होता था। श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर में पहले व्यायाम और आसन (मलखांब) का प्रशिक्षण दिया जाता था। समय के साथ पवनपुत्र में वेट ट्रेनिंग, वेट लिफ्टिंग, पावर लिफ्टिंग, रोमन रिंग, पॅरलल बार जैसे जिमनास्टिक का भी प्रशिक्षण आरंभ किया गया। विदेशी खेलों को अपनाना हमारी मजबूरी थी क्योंकि उन्हें राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में मान्यता प्राप्त थी। ओलंपिक की दृष्टि से जिमनास्टिक में लड़कों के लिए 6 प्रकार के खेल हैं और लड़कियों के लिए 4 प्रकार के खेल मान्यता प्राप्त हैं। इस दृष्टि से श्रीपवनपुत्र में हमने रोमन रिंग, पॅरलल बार की किताबें भी उपलब्ध कराई थीं।

4

श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना

पिताजी ने पहले 'परस्पर सहाय्यक संघ' की स्थापना 1936 में चेंबूर में की थी। बीस–बाईस सालों तक यह संस्था कार्यरत रही उसके बाद कुछ कारणों से जब यह संस्था बंद हो गई, तब 14 नवंबर, 1963 में उन्होंने श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना अपने खुद के जगह में की। वे इसके संस्थापक अध्यक्ष थे। पिताजी की इस दूरदर्शिता के कारण चेंबूर एवं आस-पास के इलाकों में रहने वालों के लिए व्यायाम एवं कसरत की एक सुगठित व्यवस्था हो गई। इसका गुण गौरव तब सामान्य लोगों से लेकर कई मान्यवर लोगों ने किया था। हमारे लिए यह गौरव की बात थी। वास्तव में देखा जाए तो पवनपुत्र के लिए सरकार को अलग से जगह दी जानी चाहिए थी। बतौर स्वतंत्रता सेनानी उन्होंने इसके लिए काफी प्रयास किया। दिल्ली तक पत्राचार किया। बावजूद इसके उन्हें सफलता नहीं मिली। इसलिए अपनी खुद की जमींन पर उन्होंने इस व्यायाम मंदिर की स्थापना की। आगे 1972 में अनइव्हन बार्स का नया स्वरूप और बॅलेंसिग बीम का आधुनिक स्टैन्ड पवनपुत्र के विद्यार्थियों द्वारा ही पहली बार भारत में प्रस्तुत किया गया। आगे 1982 के एशियाड खेलों में पवनपुत्र के दो खिलाड़ियों को मेडल मिला, जो हमारे लिए बड़ी उपलब्धि थी। देश आजाद होने के पहले और बाद में भी पिताजी ने विविध माध्यमों से जनसेवा की। कुछ मसलों को लेकर कोर्ट कचहरी के चक्कर भी लगाए। गांवठान के लोगों की मदद करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे, इसलिए कुछ लोग उनसे नाराज भी रहते थे।

1985 में पिताजी लकवा के शिकार हो गए। इसके बाद दत्ताराम पाठारे और सुहास पाठारे (मैं) ने संस्था की जिम्मेदारी सम्भाली और व्यायाम मंदिर के काम को आगे बढ़ाया। श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना व्यावसायिक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि सामाजिक ऋणानुबंध के तहत की गई थी। अतः एक सामाजिक संस्था के रूप में तथा खेल को मिशन मानकर यह संस्था आज भी सेवारत है। इसकी अब दो और शाखाएं बन गई हैं। सन् 1974 में श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर का रजिस्ट्रेशन किया गया। एक सामाजिक संस्था के रूप में इसके दरवाजे बिना किसी भेदभाव के छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, जरूरतमन्द, लड़के-लड़कियों के लिए मामूली फीस पर सदैव खुले थे। ये फीस भी इसलिए ली जाती थी ताकि संस्था का एडमिनिस्ट्रेशन का कामकाज ठीक से चल सके। पिताजी के बाद संस्था की पूरी जिम्मेदारी मुझ पर आ गई। चूंकि यह एक रजिस्टर्ड सामाजिक संस्था थी, इसलिए इसकी कार्यकारिणी भी बनाई जाती थी। इसी प्रक्रिया के तहत समय-समय पर विविध पदों पर काम करने का अवसर मुझे मिला। संस्थापक सदस्य होने के नाते इसकी जिम्मेदारी को आजीवन निभाना मेरा संकल्प था। इसी के तहत आज 85 साल की उम्र में भी अपनी जिम्मेदारी निभा रहा हूँ। दिन-रात एक करते हुए संस्था के उत्कर्ष के लिए अपने सहयोगियों के साथ मैं कठोर तपस्या करता रहा, आज भी कर रहा हूँ। मेरे इस तप में मेरे परिवार, साथियों तथा विद्यार्थियों का समय-समय पर सहयोग मिलता रहा है और संस्था का काम आगे बढ़ता रहा। बदलते समय के साथ व्यायाम, मलखांब, आसन के साथ-साथ ओलंपिक खेलों के तर्ज पर अन्य खेलों का समावेश किया गया (इसका जिक्र ऊपर किया गया है।) जिससे पवनपुत्र की लोकप्रियता युवाओं के बीच बढ़ती गई। धीरे-धीरे इस तरह की संस्थाओं का विस्तार मुंबई के साथ महाराष्ट्र के कई जिलों में भी होने लगा था। इन संस्थाओं को एक मंच पर लाया जाना चाहिए, ताकि सामूहिक रूप से सरकार दरबार में विविध योजनाएं एवं खेल संबंधी मांगे रखी जा सके, ऐसी चर्चा आकार ले रही थी। अतः भगवंत माधव पंत सर की अध्यक्षता में बृहन्मुंबई जिला जिमनास्टिक संगठन (माटुंगा-दादर) की

स्थापना की गई। इसकी सफलता के बाद राज्य स्तरीय जिमॅनास्टिक संगठन की भी स्थापना की गई। पवनपुत्र इन दोनों संगठनों का सदस्य बना, जिसके तहत मुंबई जिला और राज्य स्तरीय संगठनों में काम करने का अवसर मुझे मिला।

देश की आजादी के बाद चेंबूर एवं आस-पास के इलाकों में मराठी स्कूलों की कमी लगातार महसूस की जा रही थी। इसकी चर्चा ऊपर की गई है। मगर समय के साथ चेंबूर हाईस्कूल के बाद श्री ना. आचार्य विद्यानिकेतन, जनता विद्यालय, आमची शाळा, जनरल एज्युकेशन, मुक्तानंद हाईस्कूल जैसे स्कूलों की स्थापना कुछ वर्षों के अंतराल में हुई। इन स्कूलों और अन्य सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से चेंबूर और उसके आसपास के इलाकों में विविध प्रकार के खेलों का प्रचार- प्रसार में भ. मा. पंत सर, सुहास पाठारे, किसन कदम और महेंद्र चेंबूरकर आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अपने नेतृत्व तथा मार्गदर्शन में इन लोगों ने हजारों खिलाड़ियों को तैयार किया। आगे चलकर कई खिलाड़ियों ने बेहतर प्रदर्शन करते हुए न केवल चेंबूर का नाम रोशन किया बल्कि मुंबई और महाराष्ट्र का नाम भी राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर बुलंद किया। इससे चेंबूर की पहचान एक क्रीड़ा नगरी के रूप में चारों ओर प्रस्थापित हो गई थी, जो गौरव का विषय था।

5

विविध प्रतियोगिताओं में श्रीपवनपुत्र की उपलब्धियां

1967 से श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर के खिलाड़ी जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं सहभागी होते हुए लगातार सफलता हासिल कर रहे थे। 1976 में झांसी में आयोजित जिमनास्टिक प्रतियोगिता में पहला राष्ट्रीय पुरस्कार श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर को मिला। इससे श्रीपवनपुत्र की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। लड़कियों की भी संख्या अच्छी खासी बढ़ गई थी। विविध स्तर की प्रतियोगिताओं में पवनपुत्र के खिलाड़ी बेहतर प्रदर्शन कर रहे थे। 1976 में झांसी में सम्पन्न नॅशनल जिमनास्टिक प्रतियोगिता में पवनपुत्र के महेंद्र और विनय ने राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार मेडल्स प्राप्त करते हुए अपने साथ संस्था का नाम रोशन किया। ये पवनपुत्र के लिए गौरव के क्षण थे। इसके बाद 1982 में दिल्ली में आयोजित एशियाड खेल महोत्सव में श्रीपवनपुत्र के खिलाड़ियों ने पहली बार सहभागिता करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशेष पहचान बनाई। तब भ. मा. पंत सर MAGA के अध्यक्ष थे। उनके मार्गदर्शन में महाराष्ट्र की टीमें आगे बढ़ रही थीं। उनके साथ रामदास कल्याणपुरकर, एस.सी. व्यास और अमरावती के डॉ. सुरेश देशपांडे भी प्रतियोगिता के दौरान उपस्थित थे। इस प्रतियोगिता में महाराष्ट्र के खिलाड़ियों ने बहुत ही अच्छा प्रदर्शन किया था। इसमें मो. ध. गुर्जर (पुणे) के नेतृत्व में सन्मित्र टीम की 5 लड़कियों ने अपना सर्वोत्तम खेल प्रस्तुत करते हुए सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराई। इससे लड़कियों की हौसलाअफजाई हुई। महाराष्ट्र के लिए यह गौरव का विषय

था।

पंत सर कम्युनिस्ट विचार धारा के समर्थक थे। उनके माध्यम से हाउस ऑफ सोवियत कल्चर (एम्बेसी) में 16 एम.एम. की जर्मन और अमेरिकी खेल की फिल्में देखकर प्रदीप, महेंद्र चेंबूरकर, प्रतिभा, स्मिता वढावकर, कल्पना चेंबूरकर इतने प्रभावित हुए कि उन लोगों ने स्पोर्ट्स में अपना उज्ज्वल भविष्य देखना शुरू कर दिया। आगे चलकर इसके सकारात्मक परिणाम देखने को मिले। इस तरह बहुत कुछ अच्छा चल रहा थ। मगर कुछ वर्षों बाद अचानक किसी बात को लेकर पंत सर एवं चेंबूर हाईस्कूल स्कूल के वरिष्ठों के बीच कुछ अनबन हो गई। अतः चेंबूर हाईस्कूल छोड़कर भ. मा. पंत सर आरसीएफ (राष्ट्रीय केमिकल फर्टिलाइजर) मॅनेजमेंट के बुलावे पर वहां चले गए। उनके नेतृत्व में 1970 में आरसीएफ परिसर में लोकमान्य शिक्षण संस्था के अंतर्गत जवाहर विद्या भवन की स्थापना हुई। तब पंत सर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जवाहर विद्या भवन के काम को आगे बढ़ाने में किसन कदम और काळे मैडम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किसन कदम चेंबूर हाईस्कूल के विद्यार्थी थे। पंत सर भी प्रारंभ से चेंबूर हाईस्कूल से जुड़े थे। जवाहर विद्या भवन में उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ खेल की गतिविधयों को भी खूब बढ़ावा दिया। खेल उनके रग-रग में संचारित था। चेंबूर हाईस्कूल का अनुभव भी उनके साथ था। जवाहर विद्या भवन के खलाड़ियों पर उन्होंने काफी मेहनत की जिससे उनके कई खिलाड़ियों ने सफलता का परचम लहराते हुए चेंबूर, अपने स्कूल, मुंबई और महाराष्ट्र का नाम रोशन किया। बतौर मार्गदर्शक और प्रशिक्षक मैं भी अकसर जवाहर विद्या भवन में जाया करता था। वहां हिंदी, मराठी, अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा दी जाती थी। खेल का प्रशिक्षण देने के लिए वहां बड़ा-सा स्पोर्ट्स ग्राउंड एवं अन्य कई प्रकार की बेहतर सुविधाएं उपलब्ध थीं।

अपने विद्यार्थी दशा से ही मैं पंत सर से बहुत प्रभावित था। वे मेरे आदर्श तो थे ही मगर मेरे जैसे असंख्य विद्यार्थियों एवं खिलाड़ियों के भी वे

एक आदर्श गुरु एवं खेल प्रशिक्षक थे। स्वभाव से वे कुछ सख्त और अनुशासन के पक्के थे। बाहर से वे जितना कठोर एवं सख्त नजर आते थे, भीतर से उतने कोमल एवं मुलायम थे। वे कोल्हापुर के राज घराने से थे। बावजूद इसके वे एक नेक इंसान, सामान्य शिक्षक, क्रीड़ा प्रशिक्षक और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में लोगों से पेश आए, जो उनके व्यक्तित्व का विशेष पहलू था। बतौर गुरु उनका सानिध्य मुझे लंबे समय तक मिला, जिससे मेरे व्यक्तित्व में निखार आया। उनके पदचिन्हों पर चलते हुए मैं भी जीवन के ध्येय पथ को निश्चित कर रहा था। इसका लाभ मुझे आगे पवनपुत्र के संचालन में हुआ।

पंत सर के एक विद्यार्थी 'मोहन मानमोडे' जो जवाहर विद्या भवन के विद्यार्थी थे। अपने संस्मरण में लिखते हैं कि (संदर्भ- जिमनास्टिकचे शिलेदार)- '1993 में नेशनल स्कूल में आयोजित महाराष्ट्र जिमनास्टिक टीम का मैंने नेतृत्व किया था। बारहवीं के बाद मलखांब और जिमनास्टिक के नियमित अभ्यास के लिए मैंने चेंबूर गांवठान स्थित पवनपुत्र व्यायाम मंदिर में एडमिशन लिया। वहां आदरणीय नाना (सुहास पाठारे) के मार्गदर्शन में बहुत कुछ सीखने को मिला और दो सीनियर नॅशनल तथा बंगलोर में आयोजित राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता में महाराष्ट्र का प्रतिनिधित्व किया। उस प्रतियोगिता में हमारी टीम को तीसरा पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह मेरे लिए गौरव की बात थी मगर इसका श्रेय नाना जैसे समर्पित गुरु को जाता है।' आगे चलकर मोहन भारतीय नौसेना में नौकरी करने लगे। वहां भी सेनादल के आंतरिक स्पोर्ट्स प्रतियोगिताओं में कई पुरस्कार, एवं सम्मान उन्होंने प्राप्त किए। साथ ही कई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में सेनादल का नेतृत्व भी किया।

भगवंत पंत सर की एक और प्रशंसक एवं सहयोगी तारा सांडू लिखती हैं (संदर्भ - जिमनास्टिक्सचे शिलेदार)-जब मैं चेंबूर हाईस्कूल में नौकरी कर रही थी, तब मेरा परिचय पंत सर और सुहास पाठारे सर से हुआ। दोनों के व्यक्तित्व ने मुझे काफी प्रभावित किया। अपने ध्येय एवं मिशन के प्रति दोनों

पूरी तरह से समर्पित थे और उस दौर में चेंबूर के शान थे। एक ओर शिक्षा जगत में शिक्षक एवं विद्यार्थी सफलता प्राप्त कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर खेल जगत में पंत सर, सुहास पाठारे सर और कदम सर के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में कई खिलाड़ी विविध खेलों के माध्यम से देश–विदेश में सफलता हासिल कर रहे थे। यह मेरे लिए गर्व का विषय था।

सन् 1963 में हमने पवनपुत्र में आसन एवं व्यायाम के साथ-साथ भारतीय 'पोल मलखांब' खेल की शुरुआत की। उसके बाद 1967 में जिमनास्टिक की ओर रुख किया और 1976 में भारतीय जिमनास्टिक महासंघ में सफलतापूर्वक प्रवेश किया। इसी वर्ष राष्ट्रीय स्तर पर पहला पदक भी प्राप्त किया। कुल मिलाकर 13 शिवछत्रपति पुरस्कार हमारे खिलाड़ियों को मिले। महाराष्ट्र में खेल के क्षेत्र में दिया जाने वाला यह सर्वोच्च पुरस्कार है। फिर भी हमें लग रहा था कि हम अभी भी जिमनास्टिक खेल की इन ऊंचाइयों को नहीं छू पाए थे, जिसकी हमें अपेक्षा थी। वहां तक पहुंचने के लिए हम लगातार कई वर्षों तक मेहनत करते रहे। जैसे विविध स्तर पर प्रतियोगिताओं का आयोजन एवं सहभागिता, बेहतर उपकरण, बेहतर इनडोर हॉल, कोचिंग विषयक नए विचार, आर्थिक नियोजन आदि पर गंभीरता से काम करते रहे। इससे न केवल बच्चों के माता-पिता, दर्शक, बल्कि मीडिया, सरकारी संस्थाएं, विज्ञापनदाता और प्रायोजक आदि का यथोचित योगदान हमें मिलता रहा। इसी बल पर सत्तर–अस्सी के दशक में 'पवनपुत्र व्यायाम मंदिर' मलखांब और जिमनास्टिक के क्षेत्र में पूरे महाराष्ट्र में एक अग्रणी संस्था बन गई। संस्था द्वारा हम समय-समय पर राज्य स्तरीय मलखांब और जिमनास्टिक की प्रतियोगिताओं का आयोजन करते रहे। इस तरह के प्रतियोगिताओं के आयोजन से संगठनात्मक कामों का सक्षम अनुभव हमारे पास तैयार हो गया था। वह एक ऐसा दौर था, जब हम महाराष्ट्र राज्य में ऐसी प्रतियोगिताओं का आयोजन करने वाले हम एकमात्र संगठन थे। हममें यह आत्मविश्वास पैदा हो गया था कि हम सरकारी व्यवस्था के साथ मिलकर अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगितां आयोजित करते हुए ओलंपिक जैसा माहौल तैयार कर सकते हैं। मगर तब हमें

यथोचित अवसर नहीं मिला और आज हमारी वो स्थिति नहीं है। समय के साथ खेल की स्थिति भारत सरकार की बदलती नीतियों के साथ बदलती रही। इस दिशा में देश दुनिया ने काफी तरक्की की है। उदाहरण के तौर पर - दुनिया भर में और भारत में खेल के विविध चैनलों की शुरूआत, ओलंपिक और वैश्विक स्तर के खेल प्रतियोगिताओं में खिलाड़ियों के लिए बेहतर एवं आकर्षक व्यवस्थाएं आदि यह संकेत देती हैं कि खेल धीरे-धीरे अब एक उद्योग जगत में परिवर्तित हो रहा है।

आमतौर पर उपलब्धियां तथा आत्मविश्वास जीवन भर एक समान नहीं होती। यह प्रकृति का नियम है। पवनपुत्र की उपलब्धियों के मामले में भी यही सच है। अस्सी- नब्बे का दशक हमारे लिए उपलब्धियों से भरा दशक रहा। विशेषतः यह दशक हमारे लिए "महिला खिलाड़ियों" की दृष्टि से विशेष रहा। हमारी तीन महिला खिलाड़ी- पल्लवी, जस्मिता और राजेश्वरी अपने क्षेत्र में शीर्ष खिलाड़ी बनीं। राष्ट्रीय स्तर की खेल प्रतियोगिताओं में उन्होंने स्वर्ण पदक भी हासिल किए। ये हमारे लिए चरमोत्कर्ष का क्षण था। राजेश्वरी और कोमल को राज्य स्तरीय शिवछत्रपति पुरस्कार प्रदान किया गया। ऐसे भी कुछ खिलाड़ी उभरकर सामने आए जिन्होंने राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जज के रूप में सर्वोत्तम सेवाएं प्रदान कीं। इनमें विशेष उपलब्धि हासिल करने वालों में महेंद्र चेंबूरकर, दिवंगत मंजूश्री चिवटे, आशुतोष पोतणीस, कोमल पाटिल, मीनल म्हात्रे और चंद्रशेखर पाटिल आदि का नाम शामिल हैं। पवनपुत्र के श्री सजीवन भास्करन हमारे लिए एक और उपलब्धि साबित हुए, जो डेड लिफ्ट श्रेणी में विश्व रिकॉर्ड तोड़ने वाले एकमात्र भारतीय पावर लिफ्टर बने और उन्हें राष्ट्रीय स्तर के अर्जुन पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। स्थितियां हमेशा एक समान नहीं रहतीं, इसे हम खिलाड़ियों से और सामान्य इंसानों से बेहतर कौन जान सकता है?

श्रीपवनपुत्र के खिलाड़ी महेंद्र चेंबूरकर और विनय वेसावकर को नब्बे के दशक में पहली बार जब महाराष्ट्र राज्य का शिवछत्रपति पुरस्कार

मिला, तो हमारी खुशी का कोई ठिकाना ना रहा। हमारे लिए यह बेहद ही फख्र का विषय था। इस पुरस्कार के बहाने राजभवन से रूबरू होने का हमें मौका मिला। हमारे खिलाड़ियों को अब तक प्राप्त पुरस्कारों से हमारे हौसलें बुलंद थे। बरसों की मेहनत और तपस्या रंग ला रही थी, जिसके साथ हमारी जिम्मेदारियां भी बढ़ती जा रही थीं। देखते ही देखते श्रीपवनपुत्र संस्था कब इतनी बड़ी हो गई, इसका हमें पता ही नहीं चला। "फ्रेंचाईची" के लिए लोग हमसे संपर्क कर रहे थे पर "फ्रेंचाईची शब्द का अर्थ तब हमें पता नहीं था, आज भी इसकी खास जानकारी नहीं है। उस दौर में "फ्रेंचाईची" का इतना प्रचलन नहीं था। हम ठहरे सीधे-सादे नाक की दिशा में चलने वाले लोग। अतः हमें अपने काम पर, अपने मिशन पर भरोसा अधिक था। वैसे भी पैसे कमाना हमारी संस्था का ध्येय नहीं था। जब कुछ निजी संस्थाओं ने फ्रेंचाईची के बारे में पूछा, तब विस्तृत जानकारी के अभाव में हमने उस पर ध्यान नहीं दिया। कुछ वर्षों बाद पता चला की फ्रेंचाईची देने वाली कई अन्य संस्थाओं के मुकाबले हमारी संस्था आर्थिक दृष्टि से उतनी तरक्की नहीं कर पाई। मगर हां आगे चलकर हमारी 2 और शाखाएं जरूर खुलीं। नए जमाने के चमक—दमक और कमर्शियलाइजेशन से हमारी संस्था हमेशा दूर रही। यह कभी भी व्यावसायिक संस्था नहीं बनी, बनिस्बत एक सामाजिक संस्था के रूप में आज भी पिछले 65 वर्षों से हम खिलाड़ियों और खेल के उत्कर्ष लिए सेवारत है, इसका हमें अभिमान है। जैसे-जैसे संस्था बड़ी हो रही थी, पदाधिकारियों की जिम्मेदारियां भी बढ़ती जा रही थी। दिन रात एक करते हुए सभी कार्यकर्ता एवं विद्यार्थी मेहनत कर रहे थे। जिन खेलों को लेकर हम इतनी चर्चा कर रहे हैं, उनके बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

पहला बाळंभट्ट दादा देवधर पुरस्कार प्राप्त

महाराष्ट्र हौशी मलखांब संघटन की ओर से 1992 में गुरुवर्य बाळंभट्ट दादा देवधर पुरस्कार परिवर्ष प्रदान करने की घोषणा की गई। और पहला सम्मान मुंबई के सुहास पाठारे को प्रदान किया गया। यह मेरे लिए वास्तव में हर्ष एवं गर्व का विषय था। पहले सम्मान या पुरस्कार की खुशी क्या होती है, इसे शब्दों में बयां करना मुश्किल होता है। इसे आप सुधिजन बेहतर समझ सकते हैं। इस पुरस्कार सम्मान का आयोजन सांगली में किया गया था। राज्य मलखांब प्रतियोगिता पुरस्कार वितरण समारोह का यह 12 वां आयोजन था। इस गौरवपूर्ण मंच से मुझे भी शाल, श्रीफल, स्मृतिचिह्न तथा 1111/- रुपए की नगद राशि पुरस्कार के तहत सांगली के नगराध्यक्ष डी. के. पाटील के करकमलों द्वारा प्रदान किया गया। गौरव के वे पल आज इतने सालों भी मेरे आँखों के सामने जस के तस तैर रहे हैं। मलखांब खेल की प्रदीर्घ सेवा करने वाले खिलाड़ियों एवं कोच को यह सम्मान प्रतिवर्ष दिया जाएगा ऐसी घोषणा मंच से की गई। तब मैं चेंबूर हाईस्कूल में बतौर प्रशिक्षक कार्यरत था। "राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के सैकड़ों खिलाड़ियों को गढ़ने का काम श्री पाठारे ने किया है। एशियाई प्रतियोगिता 1982, एशियन जूनियर चैंपियनशीप 1992 तथा राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्तर के कई जिमनास्टिक प्रतियोगिताओं में एक सफल कोच के रूप में उन्होंने अपनी सेवाएं प्रदान की है।" इस तरह का गौरवोद्गार मेरे लिए व्यक्त किया गया। राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के अखबारों ने इसकी दखल लेते हुए प्रमुखता से न्यूज

प्रकाशित की। आज उम्र के इस पड़ाव पर उन्हीं क्षणों को याद करते हुए मैं ऊर्जा प्राप्त करता हूँ।

मलखांब– एक प्राचीन भारतीय खेल

मलखांब, जिसे मल्लखांब, मलखम्ब आदि नामों से भी जाना जाता है। देश के विभिन्न राज्यों में इसे रस्सी योग, दक्षिण में शिवस्तंभ योग, रज्जू योग, कुंडलिनी रज्जू योग (स्वामी नित्यानंद) आदि नामों से भी जाना जाता है। भारत का यह सबसे प्राचीन एवं परंपरागत खेल है, जो मल्ल और खम्ब से मिलकर बना है। मल्ल का शाब्दिक अर्थ कुश्ती भी होता है। इस खेल में खिलाड़ी लकड़ी के ऊर्ध्वाधर खंबे या रस्सी के सहारे तरह-तरह के करतब (व्यायाम, योग, आसन) दिखाते हैं। इसके लिए काफी अभ्यास की और लगन की जरूरत होती है। प्राचीन समय में इस खेल का उपयोग पहलवान और योद्धा सैनिकी प्रशिक्षण के लिए करते थे। कुछ लोगों का मानना है कि इस खेल की उत्पत्ति महाराष्ट्र में हुई थी, मगर कुछ ग्रंथों के संदर्भानुसार इसका इतिहास बारहवें शतक से मिलता है। बाळम्भट दादा देवधर को इस खेल का अग्रणी गुरु एवं जनक माना जाता है। इस खेल के संदर्भ रामायण और महाभारत काल में भी मिलते हैं। ऐसी मान्यता है कि महाबली हनुमान जी इसके प्रणेता थे। उड़ीसा में जगन्नाथ वल्लभम मलखांब अखाड़ा है जो जगन्नाथ मंदिर के स्थापना से ही कार्यरत है। दूसरे बाजीराव पेशवा के दरबार में बाळम्भट दादा देवधर ने इस खेल को महाराष्ट्र में पुनर्जीवित किया और इसका प्रचार-प्रसार महाराष्ट्र के अलावा मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में किया। ऐसी मान्यता है कि प्रारंभ में इस खेल की शुरुआत मार्शल आर्ट के रूप में हुई थी।

मलखांब और जिम्नास्टिक दोनों पूरी तरह से खेल के अलग प्रकार हैं। जिमनास्टिक जहां खर्चीला और विदेशी खेल प्रकार है, वहीं मलखांब देशी तथा कम खर्चीला खेल है। जिमनास्टिक के लिए काफी जगह और साधन–सामग्री की जरूरत होती है और इसके कई प्रकार हैं। मलखांब मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं- पोल मलखांब, हैंगिंग मलखांब और रोप मलखांब। इसके नाम में ही खांब है अर्थात खंबे पर सम्पन्न होने वाला यह एक करतब दिखाने का व्यायाम प्रकार है। मलखांब के खंबे की ऊंचाई 2.6 मीटर और परिधि 55 सेमी. तथा इसका ऊपरी ध्रुव 35 सेमी. होता है। रोप मलखांब में रस्सी का प्रयोग किया जाता है। इसके सहारे हवाई योग और जिमनास्टिक की मुद्राएं की जाती हैं। डेमोंस्ट्रेशन भी कई तरह से किए जाते हैं, जैसे चलती साइकिल पर पीछे पोल लगाकर कवायत करना आदि। इसके प्रारम्भिक दौर में सामाजिक कारणों से लड़कियां इसमें सहभागी नहीं होती थीं। मगर जैसे-जैसे समाज की सोच बदलने लगी, 1984 के बाद बड़े पैमाने पर वे भी इसमें हिस्सा लेने लगीं। वर्ष 2013 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा मलखांब को राजकीय खेल घोषित किया गया।

समय के साथ इस खेल के स्वरूप में परिवर्तन होता रहा। सरकारी स्तर पर इस खेल की मान्यता के लिए कई संस्थाएं 1990 से लगातार प्रयास कर रही थीं। 1992-93 में इस विषय को संसद में भी पेश किया गया। आखिर 1996 में इस खेल को सरकारी मान्यता मिली और राष्ट्रीय स्तर के खेलों में इसका समावेश किया गया। इससे खिलाड़ियों को कई तरह की सुविधाएं मिलने लगीं। मसलन प्रतियोगिता के लिए रेल किराए में छूट देना, सरकारी मान्यता प्राप्त खेल का दर्जा प्रदान करना आदि। हाल ही में समर्थ व्यायाम मंदिर (दादर, मुंबई) के मलखांब गुरु उदय देशपांडे जी को पहली बार इस खेल के लिए भारत सरकार द्वारा पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। यह हम सबके लिए बहुत बड़ी उपलब्धि तो है ही, मगर इतने सालों बाद मलखांब जैसे प्राचीन भारतीय खेल को उसका अधिकार मिला, इसकी खुशी अधिक है। देर से ही सही, मगर इस दुरूस्त फैसले का हम सभी स्वागत करते हैं।

इसके पहले कभी किसी मलखांब खिलाड़ी या गुरु को पद्मश्री सम्मान नहीं मिला था। इस खेल को राष्ट्रीय स्तर का दर्जा मिले, इसके लिए कई सालों से सम्बंधित लोग संघर्ष कर रहे थे। आजादी के इतने साल बाद मलखांब जैसे देशी खेल के साथ न्याय हुआ। क्या अंतरराष्ट्रीय स्तर भी इस खेल को मान्यता मिलेगी? क्या भारत में होने वाले आगामी ओलंपिक में मलखांब का समावेश हो पाएगा ? मेरे जैसे खेल प्रेमियों के लिए यह एक बड़ा सपना साकार होने जैसा पल होगा। मलखांब सिर्फ एक खेल नही बल्कि राष्ट्रीय पहचान और हमारी प्राचीन संस्कृति है। व्यायाम, मलखांब और आसन (योग) जैसे खेल प्रकार बचपन से ही मेरी रगो में संचारित था, जो पिताजी के कारण मुझे विरासत में मिला था। यह मेरे लिए अभिमान का विषय है। पिताजी ने व्यायाम एवं अपने सामाजिक कार्यों के जुनून को स्वयं तक सीमित न रखते हुए आजीवन लोगों के बीच इसका व्यापक प्रचार – प्रसार किया। इस माध्यम से चेंबूर एवं आस-पास के क्षेत्रों के हजारों युवाओं को उन्होंने इससे जोड़ा। इस तरह की गतिविधियों का तब बड़ा महत्त्व था, बल्कि आज भी है। आज हम फख्र के साथ कह सकते हैं कि खेल के क्षेत्र में भी करियर बनाया जा सकता है। जो बच्चे पढ़ाई में पीछे हैं, वे खेल के सहारे भी अपना भविष्य बना सकते हैं।

8

आसन, जिमनास्टिक, एथलेटिक्स- खेल प्रकार

एथलेटिक्स और जिमनास्टिक ये मूलतः विदेशी खेल प्रकार हैं। इनका भी मूल आधार (बेस) आसन (योग) ही है। इसे हमारे मान्यवारों ने दुनिया के सामने सिद्ध करके दिखाया है। एथलेटिक्स और जिमनास्टिक को लेकर कई अभिभावकों में दुविधा स्थिति का अनुभव मैंने किया है। स्पष्ट कर दूं कि एथलेटिक्स और जिमनास्टिक दोनों ही शारीरिक खेल प्रकार हैं, लेकिन उनमें मुख्य अंतर यह है कि एथलेटिक्स में दौड़ना, कूदना, भाला फेंक, गोला फेंक, डिस्क थ्रो और मॅराथॉन वॉक जैसे आउट डोर जैसे गतिविधियों का समावेश होता है। इसमें खिलाड़ियों को गति, शक्ति और सहनशक्ति की कसौटी पर खरा उतरना होता है। सामान्यतः इसे ट्रॅक एण्ड फील्ड के रूप में जाना जाता है। जिमनास्टिक की पहचान इनडोर खेल प्रकार के रूप है। इसमें आर्टिस्टिक (कलात्मक), रिदमिक, ट्रॉपॉलिनिंग, टम्बलिंग एरोबिक, एक्रोबेटिक, जिम्नास्ट्राड ये प्रकार होते हैं। इसमें संतुलन, शक्ति, लचीलापन, (फ्लेक्जीब्लिटी) चपलता, प्रस्तुतिकरण (प्रेजेंटेशन) और समन्वय पर जोर दिया जाता है। इसके लिए विशेष उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। इसमें शारीरिक कसरत की कलात्मकता और धैर्य की कसौटी पर खरा उतरना होता है। साथ ही बैलेंस बीम, अनइवन बार, (uneven bar) वॉल्ट, फ्लोर एक्सरसाइज आदि गतिविधियों का समावेश होता है। पुरुष मुख्यतः फ्लोर एक्सरसाइज, पॉमेल हॉर्स, रिंग्स, वॉल्ट, पॅरेलल बार और हॉरिजॉन्टल बार जैसे करतब प्रस्तुत करते हैं। वहीं महिला

खिलाड़ी वॉल्ट, अनइवन बार्स, बैलेंस बीम और फ्लोर एक्सरसाइज प्रस्तुत करती हैं। एथलेटिक्स भी बहुत पुराना खेल है और खुली जगह में प्रस्तुत किया जाता है। इसे ट्रॅक एंड फील्ड का खेल कहा जाता है। ट्रॅक की प्रतियोगिताओं में दौड़, पैदल चलना और बाधा दौड़ शामिल है, जबकि फील्ड स्पर्धाओं में जम्प, और थ्रो आदि का समावेश होता है। जिमनास्टिक भी काफी पुराना खेल है। इसकी पहचान इंडोर खेल के रूप में है। शारीरिक कौशल की आवश्यकता दोनों खेलों में होती है। रिदमिक (लयबद्ध) एथलेटिक्स में लड़कियों की सहभागिता अधिक होती है।

आसन ये योगा का ही एक प्रकार है। योगा हमारा प्रचलित एवं प्राचीनतम व्यायाम प्रकार है, जिसकी पहचान भारतीय संस्कार, भारतीय जीवन शैली और संस्कृति के रूप में है। इसकी उत्पत्ति हजारों वर्ष पहले प्राचीन भारत में ऋषियों, मुनियों द्वारा हुई है, जो आज विश्व के कई देशों में प्रचलित है। संक्षेप में कहें तो भारत इस खेल की जननी है। खेल की दुनिया में एवं सामान्य जीवन में आसनों (योग) का अनन्य महत्व है। यह ना सिर्फ एक व्यायाम प्रकार है बल्कि शरीर, मन और आत्मा को संतुलित करने की प्रक्रिया भी है। योगा के भी कई प्रकार हैं, जैसे - हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, तंत्रयोग, बिक्रमयोग, अष्टांग योग आदि। अष्टांग योग आठ अंगों का योग कहलाता है, जैसे यम (नैतिक अनुशासन), नियम (आध्यात्मिक अनुशासन), आसन (शरीर की स्थिति), प्राणायाम (श्वसन नियंत्रण), प्रत्याहार (इंद्रियों का निग्रह), धारणा (ध्यान की तैयारी), ध्यान (गहरी एकाग्रता) और समाधि (पूर्ण आत्म ज्ञान) आदि। हमारे यहां आसन को एथलेटिक्स और जिमनास्टिक का प्रथम चरण या बेस गेम माना गया है। इसके भी कई पायदान हैं, जिसमें 'प्राणायम से समाधि' तक की स्थिति का अनुभव किया जा सकता है। आयुर्वेद में भी 'स्थिरम् सुखम् आसनम्' का जिक्र किया गया है। श्री अय्यंगार की पुस्तक में 800 से अधिक आसनों की जानकारी मिलती है। आसनों को लेकर योग ऋषि पतंजलि जी की ज्ञान संपदा काफी विस्तृत एवं पुरातन है। आज देश विदेश में योग को लेकर कई संस्थाएं एवं गुरु इसका प्रचार-प्रसार कर रहे हैं और भारत की पुरातन

संस्कृति तथा विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं। आसन और जिमनास्टिक के बीच काफी गहरा संबंध है। ये एक दूसरे के पूरक खेल प्रकार हैं। पवनपुत्र व्यायाम मंदिर में आरंभ से ही आसन का प्रशिक्षण दिया जाता रहा है, क्योंकि हमारा मानना है कि आसन के सफलतम अभ्यास के बाद जिमनास्टिक, एथलेटिक्स जैसे खेल आसान लगने लगते हैं। मेरी दृष्टि से आसन सभी खेलों का बेस है, इसलिए हर खिलाड़ी को पहले आसन (योग) का गंभीरता तथा गहनता से अभ्यास करना चाहिए। इसमें निपुणता हासिल करने के बाद हर प्रकार के खेल सहज सम्भव हो जाते हैं। पुरातन भारतीय संस्कृति का यह एक अभिन्न यंग है। आज विश्व में इसकी मान्यता स्थापित हो चुकी है और 11 दिसंबर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासंघ ने 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में घोषित किया है। आज दुनिया भर में लाखों लोग योग दिवस को एकजुट होकर हर साल मनाते हैं। योग एक प्राचीन भारतीय परंपरा के साथ जीवन पद्धति है, इसे दुनिया ने आज स्वीकार किया है। भारत इसका जन्मदाता देश है। इसकी उत्पत्ति लगभग पांच हजार साल पहले भारत में हुई थी।

बांस (बेंत) से भी बनाए जा सकते हैं जिमनास्टिक के इक्विपमेंट्स –

जिमनास्टिक के इक्विपमेंट्स विदेशों से मंगाए जाने चाहिए, इस धारणा को अब खत्म करने की जरूरत है। अब हमारे देश में भी कई जगहों पर इस तरह के इक्विपमेंट्स बनाए जाते हैं। इन जगहों के बारे में ठीक से जानकारी न होने से लोगों को लगता है कि विदेशों के इक्विपमेंट्स अच्छे होते हैं। आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा की बांस (बेंत) से जिमनास्टिक के इक्विपमेंट्स बनाना सम्भव है। बांस की मदद से कम लागत में अच्छे और टिकाऊ इक्विपमेंट्स बनाए जा सकते हैं। बांस एक प्राकृतिक संपदा है, जो हमारे देश में विपुल मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं। इसकी बागवानी भी की जा सकती है। बांस से इक्विपमेंट्स बनाने की टेक्निक यदि लोगों को बता दी जाए या ठीक से प्रशिक्षण दिया जाए तो कई लोगों के लिए रोजगार के नए अवसर भी उपलब्ध हो जाएंगे। बेंत से फर्नीचर

बनाए जाते हैं, ये तो हम सभी जानते है। बेंत से बने झूले संभ्रांत घरों में देखे जाते हैं। बांस पर विशेष प्रकार की प्रक्रिया करने से उसे मोल्ड करके आवश्यक फर्नीचर्स और झूले बनाए जाते हैं। आसाम जैसे भागों में यह प्रचलित उद्योग है। आसाम के कुछ मंदिरों में बहुत ही प्राथमिक अवस्था के बांस से मिठाई भी बनाई जाती है, जिसे प्रसाद के रूप में मैंने खाया है। ठीक इसी प्रकार से जिमनास्टिक के इक्विपमेंट्स भी बनाए जा सकते हैं, जो सस्ते टिकाऊ और देशी ब्रांड के होंगे। यदि यह प्रयोग सफल हो जाता है तो बहुत बड़े पैमाने पर इसका एक्सपोर्ट का व्यापार भी विकसित किया जा सकता है।

मुंबई की सड़कों पर बांस के तीन-चार खंबों को गाड़कर बीच में रस्सी कसकर उस पर संतुलन बनाकर नटनी को चलते हममें से अनेकों ने देखा होगा। ये खेल प्रकार आखिर क्या है? क्या ये जिमनास्टिक का एक प्रकार नहीं है? इसी तरह आगामी दिनों में बायो डिजल के निर्मिति के लिए बड़े पैमाने पर बांस की जरूरत देश में होगी। इसे ध्यान में रखते हुए बड़े पैमाने पर बांस की खेती किसानों के लिए उद्यमी एवं लाभदायक सिद्ध हो सकती है। बेंत से बने जिमनास्टिक इक्विपमेंट्स को HB/UB (Elasticity) कसौटी पर खरा उतरने के लिए आई.आई.टी. एक्सपर्ट से जांच कारवाई जा सकती है। PB, RR के रिंगस्, PH के हँडल्स, बॅलसिंग बीम के लॉन्ज (Elasticity, Rigidness) पर प्लाई का प्रयोग करके Low- High के ट्रेनिंग के लिए अनेक बीम (Fixed Height) सस्ते दाम में तैयार किए जा सकते है। इसके लिए एक्सपर्ट लोगों की मदद ली जा सकती है। बचपन की बात मुझे याद आ रही है, जब मेरे पिताजी परस्पर सहाय्यक संघ व्यायाम मंदिर चलते थे तब हमने बेंत की लाठी से लाठी – काठी प्रकार सीखा था जो लचीलेपन (Elasticity) का द्योतक था। बांस से जिमनास्टिक इक्विपमेंट्स बनाने की प्रक्रिया उसकी साईज आदि की जानकारी गूगल, यू ट्यूब पर उपलब्ध है। कहने का तात्पर्य यह है की विदेशी उपकरणों पर निर्भर न रहते हुए हमें देशी उपकरण निर्माण प्रक्रिया पर ध्यान देना चाहिए। क्रिकेट के लिए आवश्यक बॅट और पॅड आखिर कैसे बनाए जाते हैं? इसी आधार पर देशी

जिमनास्टिक इक्विपमेंट्स बनाना सहज सम्भव है।

9

विविध खेल प्रतियोगिताओं में मेरी सहभागिता

अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद 1955 से 1958 तक अर्थात ओल्ड एस.एस.सी. तक की शिक्षा मैंने चेंबूर हाईस्कूल में पूरी की। इस दौरान स्कूल की शैक्षणिक गतिविधियों के साथ–साथ मैं खेल से भी जुड़ा रहा। खेल में मेरी रुचि अधिक थी। स्कूल के कई विद्यार्थी पवनपुत्र से भी जुड़े हुए थे। चेंबूर हाईस्कूल में आ जाने से मुझे पवनपुत्र का काम-काज संभालने में आसानी हो गई। भगवंत माधव पंत (विशाल गडकर) तब वहां एक अनुशासित शिक्षक हुआ करते थे। पंत सर, आजगावकर और मंडलेचा सर आठवीं से आगे के बच्चों को बास्केटबॉल, एथलेटिक्स, वॉलीबॉल, खोखो, कबड्डी जैसे खेल सिखाते थे। उन बच्चों में मैं भी शामिल था। मुझे मलखांब, आसन के अलावा बास्केटबॉल और एथलेटिक्स में भी रुचि थी। पंत सर के मार्गदर्शन में मैंने बास्केटबॉल, वॉलीबॉल आदि खेल सीखते हुए उसका खूब अभ्यास किया। इससे विद्यार्थी दशा से ही स्कूल की टीम में मेरा समावेश होने लगा। श्रीपवनपुत्र की स्थापना के बाद पिताजी विद्यार्थियों को मलखांब तथा आसन (योगा) का प्रशिक्षण देते थे। उन्हें देशी खेलों से लगाव अधिक था। विद्यार्थियों से वे इसका आग्रह भी करते थे कि यदि देशी खेलों का बेस तैयार हो जाता है, तो विदेशी खेल आसानी से सीखे जा सकते हैं। खेल के लिए घर से मुझे पूरा समर्थन प्राप्त था। स्विमिंग के लिए मैं साइकिल से दादर (गांधी टँक) तक जाता था। ग्रीष्म कालीन और दिवाली की छुट्टियों में जमकर खेल का अभ्यास करता था। स्कूल के दिनों में

स्काउट और कॉलेज में आने के बाद एनसीसी से भी मेरा जुड़ाव रहा। अंतर स्कूल, अंतर कॉलेज बास्केटबॉल, गोलाफेंक, डिस्कस थ्रो, ट्रिपल जंप, स्विमिंग आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेता था। खेल के साथ-साथ मुझे चित्रकला में भी रुचि थी। जर्मन लेखक कुंझल की पुस्तकें पढ़कर मैं 1967 के बाद जिमनास्टिक की ओर मुड़ा।

एक कुशल खिलाड़ी के रूप में राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में सहभागिता करने का मौका मुझे मिलने लगा था, जिससे मेरे हौसले बुलंद थे। खेलों के साथ मेरी आगे की पढ़ाई भी जारी थी। पंत सर और पिताजी ने 'चेंबूर हाईस्कूल की लाइब्रेरी' में ओलंपिक्स, जिमनास्टिक, एफएक्स, एचबी, पीबी, पीएच की देशी-विदेशी अच्छी किताबें मंगवाकर संदर्भ के लिए रखवाई थीं। उनको पढ़ते हुए मेरा और अन्य कई विद्यार्थियों का काफी ज्ञानवर्धन हुआ। ये पुस्तकें हमारे लिए कई दृष्टि से मार्गदर्शक सिद्ध हुईं। खेल के क्षेत्र में पंत सर द्वारा दिए गए बहुमूल्य योगदान को देखते हुए बतौर कुशल संघटक उन्हें महाराष्ट्र सरकार का शिवछत्रपति पुरस्कार प्रदान किया गया, जो हम सबके लिए गौरव का विषय था।

आप लोगों को बता दूँ कि पहले मैं B.Sc. का क्षात्र था। फिजिक्स का एक विषय था Heat Engine, जो कभी मेरे पल्ले नहीं पड़ा। काफी प्रयास करने के बाद भी मैं B.Sc. फाइनल नहीं कर पा रहा था। मेरे स्कूल के प्रिंसिपल "जोशी" सर हमेशा मेरे पीछे लगे रहते थे कि मैं जल्दी से B.Sc. की पढ़ाई पूरी कर लूँ। उनका भी यही कहना था कि Heat Engine एक ड्राय सब्जेक्ट है। अंततः काफी मेहनत के बाद किसी तरह मैंने B.Sc. जूनियर तक की शिक्षा 1964 में पूरी की। मगर फाइनल न करने के कारण मेरी ये डिग्री अधूरी थी। मुझे भी लगता था कि किसी तरह मैं ग्रॅजुएशन तक की शिक्षा पूर्ण कर लूँ। मगर नियति साथ नहीं दे रही थी।

इस बीच गाँव से आए सदाशिव जाधव से मेरा परिचय हुआ जो चेंबूर हाईस्कूल में पी.टी. एवं हिंदी के टीचर थे। वे काफी ईमानदार और मेहनती थे। उनकी भी डिग्री अधूरी रह गई थी। अतः हम दोनों ने तय किया की हम

अपनी डिग्री तक की शिक्षा पूरी करेंगे। इसलिए B.Sc. की पढ़ाई बीच में छोड़कर आर्ट्स से डिग्री प्राप्त करने की योजना बनाई। तत्पश्चात 1972 में पुणे यूनिवर्सिटी से हमने 'बी.ए.' पास किया। उसके बाद मैंने 'बी.एड.' भी कर लिया। इसके आधार पर 1973 में मेरी चेंबूर हाईस्कूल में बतौर शिक्षक नियुक्ति हो गई। इस तरह मैं शिक्षकी पेशे में आ गया। हाईस्कूल में मुझे गणित और विज्ञान विषय पढ़ाने की जिम्मेदारी दी गई। सायंस मेरा बेस था इसलिए इस जिम्मेदारी को आसानी से निभा पाया। नौकरी मिल जाने के कारण अब मैं अपने पैरों पर खड़ा हो गया था। उस दौर में मुंबई जैसे शहर में नौकरी मिलना इतना आसान नहीं था। उस दौर में भी मुंबई की पहचान सपनों की नगरी के रूप में थी और आज भी है। इस शहर में गिरने, फिसलने और संभलने के कई मार्ग हैं। हम किस मार्ग का अवलंबन करते हैं, ये उस पर निर्भर करता है। देश के कोने- कोने से लोग अपनी किस्मत आजमाने मुंबई में आते है। मेहनत, लगन और तपस्या ले बल पर सफलता और असफलता तय होती है। यदि आपके पास हुनर है तो रोजी- रोटी के कई अवसर यहां उपलब्ध हैं। ऐसे हजारों उदाहरण यहां देखने को मिल जाएंगे, जो झोला लेकर आए और अपने हुनर, कर्मठता तथा किस्मत के बल पर एक मिसाल बन गए और मुकद्दर का सिकंदर कहलाए। वैसे भी जिंदगी के रण में खुद ही कृष्ण और खुद ही अर्जुन बनना पड़ता है। खुद ही सारथी बनकर रोज जीवन के महाभारत को लड़ना पड़ता है...।

खैर नौकरी के साथ–साथ मैं मलखांब, जिमनास्टिक और वेटलिफ्टिंग से भी जुड़ा रहा। साथ ही कोचिंग के गुर भी सीखता रहा। सोशल सर्विस लीग व्यायामशाला के मधुकर दरेकर तब वेट लिफ्टिंग कोच थे। बढ़ती उम्र को देखते हुए उनके साथ मिलकर मैंने भी कोचिंग आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे मुझे गति मिलती गई और समर्पित भाव से मैं साधना में लीन रहा। अब मैं इस काबिल हो गया था कि जिला स्तर से उठकर राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की खेल गतिविधियों एवं कोचिंग के क्षेत्र में ध्यान केंद्रित करूं। वह ऐसा समय था जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारे देश के खिलाड़ी खास प्रदर्शन नहीं कर पा रहे थे। हम सबके लिए चिंतन का विषय था। इसके कई कारण थे,

जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। मगर खेल को लेकर कहीं से भी यदि कुछ विशेष जानकारी मिलती तो, उसे मैं अपनी डायरी में नोट कर लेता था। स्पोर्ट्स के प्रति सरकारी रवैय्या एकदम निराशाजनक था। सरकारी स्तर पर खेल को लेकर सिर्फ खाना पूर्ति की जाती थी। क्रिकेट को छोड़ दिया जाए तो अन्य खेलों को लेकर आज भी लगभग वही स्थिति है। इसके पीछे कई कारण हैं, जिसे हम सभी बेहतर रूप से जानते हैँ। खैर, समस्याओं के समाधान के लिए मैं और मेरे जैसे कई लोग सरकारी दफ्तरों चक्कर काट रहे थे। मैं खुद कई अफसरों से मिला, खेल मंत्रालय से पत्राचार किया, लेकिन आश्वासन के अलावा स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ। बहुत दबाव आने पर सरकारी अफसर किसी तरह फाइल को आगे बढ़ाकर हाथ ऊपर कर देते थे। कुछ वर्षों बाद फ़ाइल बंद कर देते थे। सरकारी स्तर पर काम करने का तरीका तब भी वही था और आज भी वैसा ही है। खैर, सारा दोष उन अधिकारियों का नहीं है, बल्कि उन नेताओं और मंत्रियों का भी है, जिन्हें सिर्फ वोट और नोट से मतलब होता है। यह बहुत लंबा विषय हो सकता है, इसलिए इसे यहीं विराम देते हैं। किसी भी विषय को लेकर सरकारी कार्यशैली हमेशा से यही रही है, जिससे हम सभी भलीभांति परिचित हैं। मैंने इसका जिक्र सिर्फ इसलिए किया क्योंकि बिना सरकारी इच्छाशक्ति के किसी भी काम को बेहतर अंजाम तक नहीं पहुंचाया जा सकता। मेरी रुचि स्पोर्ट्स की उन्नति को लेकर थी और आज भी है इसलिए से संबंधित कई योजनाओं को लेकर मैं मंत्रालयों के चक्कर काटता था, ताकि कुछ अच्छा और बेहतर किया जा सके। कई नेताओं एवं मंत्रियों के दरबार में हमने हाजिरी लगाई, मगर वो सफलता नहीं मिली, जिसकी मुझे अपेक्षा थी। बावजूद इसके अपनी संस्था के माध्यम से जितना संभव था, उतना करने का हमने प्रयास किया। इसके लिए कई बार मैंने अपनी जेब से पूंजी लगाई और जिम्मेदारियों को निभाता रहा।

मैं या मेरे साथी इतने बड़े पदों पर आसीन नहीं थे कि तुरंत स्थिति में बदलाव लाया जा सके। इस विषय को लेकर मीडिया में लगातार लिखा जाना चाहिए, ऐसी इच्छा होते हुए भी जीवन की आपाधापी में बहुत कुछ

पीछे छूट गया। व्यक्तिगत स्तर पर एक सामान्य आदमी और कर भी क्या सकता है? अन्य देशों की तुलना में हमारा देश खेल की उपलब्धियों को लेकर इतना पीछे क्यों है? इसकी विस्तृत मीमांसा करना आवश्यक है मगर यहां अपनी कुछ सीमाएं हैं इसलिए इस विषय को यहीं विराम देकर आगे बढ़ते हैं। जीवन में मैं बहुत चाक-चौबंध नहीं था, पर स्पोर्ट्स के प्रति गंभीर था, क्योंकि यह मेरा जुनून था।

बहरहाल मलखांब और भारतीय व्यायाम प्रकार जैसे कुस्ती, लाठी काठी, समतोल मार्चिंग आदि के प्रगत प्रशिक्षण के लिए 1964 में मैं अमरावती गया। वहां एक महीने तक ग्रीष्मकालीन कोर्स किया। 1969 में पटियाला में 40 दिन का In service-orientation का कोर्स हजारा सिंह और गुरुदयाल बावा सर के मार्गदर्शन में किया। 1967 में बतौर कोच मिरज (अंबाबाई तालीम संघ), सोशल सर्विस लीग (परेल) और अगरताला गया। योगा के लिए कैवल्य धाम (लोनावला शाखा) और मुंबई के मरीन ड्राइव में भी गया। बाहर जाने से राष्ट्रीय स्तर पर मेरा जनसम्पर्क भी बढ़ रहा था। खेल मेरी आत्मिक संतुष्टि का अभिन्न अंग बन गया था, इसलिए इससे संबंधित जो भी गतिविधियां होती उसमें संभवतः शामिल होता था। खेल के कारण मेरा स्वास्थ ठीक रहता था, साथ ही मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास भी हो रहा था। मानसिक तनाव से भी मैं मुक्त था। इस बात को मैं लगातार महसूस कर रहा था। आप पाठकों से भी मेरी गुजारिश है कि आप स्वयं या अपने बच्चों को किसी ना किसी खेल गतिविधि से अवश्य जोड़ें, इसे जीवन का घटक बनाएं। आगे चलकर कोई सफल खिलाड़ी बने या ना बने, पर मेरी सोच के अनुसार हर इंसान को जीवन में कोई ना कोई खेल जरूर खेलना चाहिए। खेल को जीवन में एक अहम स्थान दिया जाना चाहिए। इसके बहुत लाभ हैं।

10

गुलाब इंजीनियरिंग वर्क्स

गुलाब रामनाथ पाठारे मेरी मां का नाम था। उसके नाम से जिमनास्टिक इक्विपमेंट्स बनाने का कारोबार मेरा छोटा भाई करेगा, इसकी हमने कभी कल्पना नहीं की थी। मेरा छोटा भाई अनिल मेरे साथ था। उसे मेरी तरह व्यायाम, आसन या पवनपुत्र संस्था के सामाजिकता में बहुत रुचि नहीं थी। मगर मुझे संस्था के कार्य में उसकी जरूरत थी। बड़ा भाई होने के नाते उसे अपने पैरों पर खड़ा करना मेरी नैतिक जिम्मेदारी भी थी। उसके रोजी-रोटी की चिंता हम सबको थी, इसलिए वह अपना कोई रोजगार शुरू करे इसके लिए हम सभी आग्रही थे। व्यायामशाला के लिए आवश्यक इक्विपमेंट्स हमें बाहर से खरीदना पड़ता था। कुछ वर्षों बाद उसने 'रे रोड' में मोटर पार्ट्स के स्टड्स बनाने का काम शुरू किया। रे रोड में तब बड़े पैमाने पर शिपब्रेकिंग का काम चलता था। नब्बे के दशक में शिपब्रेकिंग का काम गुजरात के अलांग में शिफ्ट हो गया। जब तक रे रोड (दारूखाना) में शिपब्रेकिंग का काम चलता था, तब तक कारखाने के लिए आवश्यक कच्चा माल सस्ते दाम में मिल जाता था। इसके तहत जिमनास्टिक इक्विपमेन्ट्स बनाने का काम अनिल ने एक्सपेरिमेंट के तौर पर पहले रे रोड में शुरू किया और अपने यूनिट का नाम उसने गुलाब इंजीनियरिंग वर्क्स रखा।

रे-रोड के इस यूनिट में प्रारम्भिक तौर पर काम शुरू हुआ। इसकी सफलता के बाद कुछ वर्षों के बाद अनिल ने अंधेरी में नटबोल्ट तथा

इक्विपमेन्ट्स मैन्युफैक्चरिंग का काम शुरू किया। अपनी सारी जिम्मेदारियों को संभालते हुए कुछ समय तक मैं भी अनिल के साथ मदद करने के उद्देश्य से काम करता रहा। स्पोर्ट्स के लिए आवश्यक इक्विपमेन्ट्स बाहर से मंगाने की प्रक्रिया में हमें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। इसलिए स्पोर्ट्स इक्विपमेन्ट्स बनाने का काम अनिल ने शुरू किया। इसकी सफलता के कुछ वर्षों बाद अनिल ने ठाणे में भी एक यूनिट खोल लिया। हमारे पिताजी का बहुत पहले से आग्रह था कि युवाओं को नौकरी करने की बजाय अपना खुद का व्यवसाय करना चाहिए। इसी के तहत अनिल ने अपना सेल्फ एम्प्लॉइमेन्ट का काम शुरू किया। उस दौर में किड्स इक्विपमेंट का प्रचार-प्रसार करना हमारी प्राथमिकता थी, इसलिए कई जगहों पर हमने किड्स इक्विपमेंट की प्रदर्शनियां लगाई। हमारा प्रयास मूल रूप से ऐसा था कि अन्य राज्यों या विदेशों से खेल इक्विपमेन्ट्स मंगाने की बजाय हम अपने देश में इसका निर्माण करें। इस तरह का कारोबार दिल्ली, चण्डीगड़ और दक्षिण के कुछ राज्यों में शुरू हो गया था। हमने इसका गहन अध्ययन किया और मुंबई के साथ अन्य प्रदेशों में इसका सफल प्रयोग भी किया।

राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं की सफलता के बाद हमारी नजरें अब अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं पर टिकी थीं, मगर अंतरराष्ट्रीय स्तर के इक्विपमेंट्स हमारे देश में नहीं थे, इस वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता। इसे लेकर हम हताश थे मगर निराश नहीं थे। अतः अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुकाबले के लिए हमने तैयारियां शुरू कर दी। इलास्टिसिटी (Elasticity) के बारे में मैंने किताबों से काफी जानकारी प्राप्त की। आवश्यक कच्चे माल के तलाश में हमने अन्य कई राज्यों में शोध शुरू किया। इस प्रक्रिया में बार-बार हमें सरकारी संस्थाएं और अन्य संस्थाओं के चक्कर काटने पड़ रहे थे। इसके पीछे हमारा उद्देश्य सिर्फ इतना था कि खेलों के लिए आवश्यक आधुनिक स्पोर्ट्स उपकरण हमारे देश में बनाए जाएं। अंतः इलास्टिसिटी की दृष्टि से हमने अमेरिकन पाइनवुड, पैरेलल और अनइवेन बार्स अपने यहां उपलब्ध कच्चे माल से बनाए जाएं, इसके

तहत प्रयास शुरू किया। इस दिशा में हमने प्रायस किया और इसमें कुछ हद तक हमें सफलता भी मिली। आर्थिक सक्षमता के अभाव में हम इस उपक्रम को आगे नहीं बढ़ा सके। इस विषय को यहीं विराम देते हुए हम आगे बढ़ते हैं। खेल एवं खिलाड़ियों के उत्कर्ष को लेकर हम अपनी संस्था के माध्यम से लगातार प्रयत्न करते रहे, ये कहते हुए मुझे अभिमान हो रहा है।

11

माताजी एवं पिताजी का स्वर्गवास

इस तरह मेरे जीवन बहुत कुछ अच्छा और उतार-चढ़ाव चल रहा था। प्रयत्नों की पराकाष्ठा हमारे ओर से जारी थी। इस बीच वृद्धवस्था के कारण मेरी मां अस्वस्थ रहने लगी थीं। उसके स्वास्थ को लेकर हम सभी परेशान रहने लगे थे। मां के कारण मेरे जीवन में कोई बनावटीपन नहीं था, जीवन में कोई जटिलता या असहजता नहीं थी। मां आखिर मां होती है। मेरी मां आस्था का समंदर थी। ईश्वर ने जगत में माताऐं बनाई, क्योंकि वह सब जगह उपस्थित नहीं रह सकता था। मां के बगैर सृष्टि का रचयिता भी पूर्ण नहीं हो सकता। मां के दर्शन मात्र से ही ईश्वर के भी दर्शन हो जाते हैं। इसलिए मुझे लगता है, जिसने मेरी मां को बनाया, वह सचमुच कुछ गजब की शक्ति होगी, एक महान आत्मा होगी। जीवन में विश्वास, आस्था, भद्रता, सृजन, प्रेम-वात्सल्य, ममता और ना जाने कौन-कौन सी अच्छी चीजें मौजूद हैं, क्योंकि माताएं ईश्वर के रूप में धरा पर मौजूद है। संत ज्ञानेश्वर जी ने ज्ञानेश्वरी में लिखा है इस दुनिया में मां का होना, सचमुच ऐसा ही एक अनोखा है, जिसको शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल है। मां न होती तो यह दुनिया न इतनी खूबसूरत होती, न अनोखी और न ही रहस्यों से भरी। 1992 का वह साल था, जब माताजी का देहांत हो गया और इसके 6 महीने बाद ही अर्थात 3 जनवरी, 1993 में पिताजी ने भी इस जगत को अलविदा कह दिया। यह हमारे परिवार के लिए बेहद दुखद घटना थी। पिताजी के देहांत की खबर से चेंबूर एवं आस-पास का क्षेत्र शोकाकुल हो गया। उनके पार्थिव

शरीर पर जब तिरंगा ओढ़ाया गया, तब सबकी आंखें नम हो गईं। मगर वो पल हम सबके लिए गौरव एवं अभिमान का विषय था। समर्थ रामदास जी ने कहा है, "मरावे परी कीर्ती रूपे उरावे।" (मरने के बाद भी कीर्ति बनी रहे) इसे हम अपनी आंखों से देख रहे थे। मृत्यु अटल है, मगर हमारे द्वारा किए गए कार्यों की कीर्ती अमर होती है, यही जीवन की सच्चाई है। जहां जन्म है वहां मृत्यु भी है, यही प्रकृति का नियम है। आज भी लोग पिताजी को याद करते हुए उनकी समृतियों को अभिवादन करते हैं, यह मेरे लिए अभिमान का विषय है।

मेरे पिताजी कई वर्षों से पॅरालिसिस (पक्षाघात) से पीड़ित थे। कई जगहों पर उनका इलाज करवाया गया पर कोई सकारात्मक लाभ नहीं हुआ। एक दिन अपनी बसी-बसाई दुनिया छोड़कर वे स्वर्गवासी हो गए। इस मायावी जगत को उन्होंने उस दिन अलविदा कह दिया। इस समय भजन की कुछ पंक्तियां मुझे याद आ रही हैं –

" क्या लेके आया बंदे
क्या लेके जाएगा
दो दिन की जिंदगी है
दो दिन का मेला।।

उनकी बीमारी के दौरान मेरी छोटी मौसी रेवती ने पूरे मन से अंत तक उनकी सुश्रुषा की। उनको नहलाने से लेकर अन्य सारी प्रक्रिया को निपटांने में उसने अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इस प्रक्रिया में मैं भी उसके साथ उपस्थित रहता था। इसे निपटाते हुए जब मैं स्कूल पहुंचता था तो, अकसर स्कूल पहुंचने में देर हो जाती थी। इससे स्कूल की सुपरवाइजर मैडम की मुझे डांट सुननी पड़ती थी। खैर दिन गुजरते रहे और प्राप्त अनुभवों से हम समृद्ध होते रहे। मैं तो मिट्टी का मात्र एक गोला था, उस मिट्टी से शिल्प गढ़ने का काम मेरे माता–पिताजी ने किया, इसलिए मैं उनके ऋण से कई जन्मों तक उऋण नहीं हो सकता। मैं तो उनका बेटा था मगर सिर्फ मैं ही नहीं, मेरे जैसे सैकड़ों लोगों को गढ़ने का काम मेरे पिताजी ने किया था, जिसका

स्मरण लोग आज भी आदर के साथ करते हैं। बाद में मुझे जब महाराष्ट्र सरकार का शिवछत्रपति पुरस्कार मिला, यह देखने के लिए देवता समान मेरे माता-पिता इस लोक में नहीं थे, इस बात का दुख आज भी होता है।

12

रेवती महंत का योगदान

रेवती महंत अर्थात मेरी मौसी। पवनपुत्र के संवर्धन और देखरेख में उसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। पवनपुत्र में लड़कियों के लिए वो एक आधार स्तम्भ थी, उसके कारण लड़कियों का आत्मविश्वास बढ़ जाता था। पिताजी ने बहुत प्रारंभ में जिन 3 लड़कियों को सिर पर दीपक रखकर विविध आसन करने का प्रशिक्षण दिया था, उनमें से एक रेवती मौसी भी थी। उत्सवों के दौरान आयोजित जुलूस में ये लड़कियां संतुलन बनाते हुए जब आसन प्रस्तुत करती थीं तब लोग दांतों तले अंगुली दबा लेते थे। लड़कियों द्वारा आसन करना, व्यायामशाला जाना तब समाज की दृष्टि से आसान बात नहीं थी। उनको देखते हुए बाद में कई लड़कियों का प्रवेश पवनपुत्र में हुआ, जिनकी पूरी जिम्मेदारी रेवती मौसी संभालती थीं। वे लड़कियों के लिए एक तरह से प्रेरणा स्रोत थीं। उस दौर में लड़कियां आज की तरह फॉरवर्ड नहीं थीं। उनकी सीमारेषा स्कूल, कॉलेज तक ही सीमित थी। व्यायामशाला में आकर कसरत करना, योगा सीखना तो बहुत दूर की बात थी। लिओटार्ड तो छोड़ो हाफनिकर (हाफ पैंट) में जिमनास्टिक्स करने के लिए कहना भी बड़ा कठिन काम था। ऐसे दौर में रेवती मौसी आगे बढ़कर लड़कियों का हौसला बढ़ाती थीं। 1968 में रेवती मौसी महाराष्ट्र के लड़कियों की टीम की व्यवस्थापक के रूप में दिल्ली में उपस्थित थीं। 1954 तक चेंबूर में मराठी माध्यम का कोई स्कूल नहीं था, अतः रेवती ने दादर के छबिलदास हायस्कूल में अपनी शिक्षा पूरी की। मैट्रिक वह प्रथम

श्रेणी में पास हुई, यह हमारे लिए आश्चर्य का विषय था। संस्कृत विषय में हम बच्चों को जो कठिनाइयां आती थीं उसे वो सहजता से हल कर देती थीं। तर्खड़कर के तीनों भाषांतर पाठमाला उसे मुंहजबानी याद थे। कुछ महिनों तक उसने रेशनिंग ऑफिस में नौकरी भी की थी। तब स्त्रियों का नौकरी करना बहुत उचित नहीं माना जाता था। अतः उसने वो नौकरी छोड़ दी। उसके बाद पूरी तरह से वह पवनपुत्र व्यायामशाला का काम देखती थी। पवनपुत्र विद्यार्थियों की जो फीस जमा होती थी, उसे बैंक में जमा करना, विद्यार्थियों पर ध्यान देना, उनकी परेशानियों को दूर करना, पवनपुत्र का हिशाब – किताब संभालना इत्यादि काम वो मन लगाकर करती थीं। मुख्य रूप से देखा जाए तो लड़कियों को व्यायामशाला आने में प्रोत्साहन देना, उनकी समस्याओं का समाधान करना तथा उनसे आसन का अभ्यास करवाने में रेवती मौसी का बड़ा योगदान था। उनका देहांत 2 मई, 2011 को पनवेल में वृद्धावस्था के कारण हुआ। वे अविवाहित थीं। उनका जाना पवनपुत्र के लिए बड़ी क्षति थी। उनको याद करते हुए मैं उन्हें नमन करता हूँ। इस दौरान मैं विविध खेल संगठनों में बतौर पदाधिकारी काम कर रहा था। इस बारे संक्षिप्त जानकारी आगे प्रस्तुत है।

विविध खेल संगठनों में मेरा पदभार

जिला स्तर से लेकर, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर पवनपुत्र के खिलाड़ी परचम लहरा रहे थे। जिससे पवनपुत्र की चर्चा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। खिलाड़ियों की सफलता को देखते हुए हमें भी खुशी होती थी। लगता था जैसे हमारी तपस्या सफल हो रही हो। अनेक जगहों पर आने-जाने के कारण और विविध संगठनों मे काम करने के कारण मेरा जनसम्पर्क भी बढ़ गया था। काफी लोगों से अच्छा परिचय भी हो गया था। अतः विविध खेल संगठनों के विविध पदों पर काम करने के अवसर भी मिलने लगे थे। आगे बढ़ाने के लिए एवं पवनपुत्र की दृष्टि से यह आवश्यक था। अतः पवनपुत्र की जिम्मेदारियों को संभालते हुए मैंने 'महाराष्ट्र राज्य जिमनास्टिक संगठन' (MAGA-Maharashtra Amature Gymnastics Association) के सह कार्यवाह, उसके बाद कोषाध्यक्ष पद की जिम्मेदारियों को कुछ वर्षों तक मैंने संभाला। आगे 1984 से 2004 तक चेयरमन पद पर भी काम किया। इसके अलावा राज्य एवं राष्ट्रीय मलखांब संगठन में भी चेयरमन पद पर कुछ वर्षों तक काम किया। 1970 से रेफरी (जज) के रूप में विविध प्रतियोगिताओं में मैंने अपनी सेवाएं प्रदान की। यह सिलसिला 2010 तक दिल्ली में आयोजित कॉमनवेल्थ गेम्स तक चला। चेंबूर हाईस्कूल में पंत सर के मार्गदर्शन में मैंने बास्केटबॉल, एथलेटिक्स का गहन प्रशिक्षण प्राप्त किया था, जिसका लाभ मुझे राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में और रेफरी (जज) की भूमिका निभाते हुए हुआ। 1969 में

पटियाला जाकर मैं जिमनास्टिक का प्रशिक्षण लेकर मुंबई वापस आया, तो उस तरह की व्यवस्था असोसिएशन के माध्यम से मुंबई की संस्थाओं में लागू करने की कोशिश की। एक बात और बता दूं कि श्री पंत जी ने मेरे साथ NIS (National Institute of Sports) में स्विमिंग का प्रशिक्षण पूर्ण किया था। इससे उनसे मेरी नजदीकियां बढ़ गई थीं। वहां भी हम खाली समय में संस्था और हाईस्कूल की चर्चा किया करते थे।

साठ के दशक में महाराष्ट्र में जिमनास्टिक्स का खेल पुलिस की नौकरी करने वालों तक सीमित था। पुलिस डिपार्टमेंट में नौकरी के लिए यह आवश्यक घटक था। उनका मुख्य कार्यालय मुंबई के नायगांव (परेल) में था, इसलिए ट्रेनिंग के सिलसिले में मेरा वहां आना-जाना लगा रहता था। 1963 के आस-पास सेंट जेवियर्स (परेल) में श्री कल्याणपुरकर ने नॅशनल जिम्नास्टिक्स प्रतियोगिताओं का आयोजन किया था, वहां भी हमारे खिलाड़ी सहभागी हुए। इन सभी के मार्गदर्शन में और मेरे द्वारा किए गए लागातार प्रयासों से 1967 में हमने बृहन्मुंबई जिला जिम्नास्टिक्स एसोसिएशन की स्थापना की। महाराष्ट्र राज्य का मुंबई पहला ऐसा जिला बना, जहां जिम्नास्टिक्स की गतिविधियों को अधिकाधिक गति मिली। मलखांब की भी गतिविधियां समांतर रूप से कई जगहों पर चल रही थीं। बाद में 1976 के आस-पास जिम्नास्टिक्स और मलखांब को अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया। तब मैं महाराष्ट्र राज्य जिमनास्टिक संगठन (MAGA – Maharashtra Amature Gymnastics Association) का कोषाध्यक्ष (अकाउंट्स) का काम देख रहा था। उसके बाद 2004 तक चेयरमन पद पर काम करते हुए संघ को नई ऊंचाई देने का मैंने प्रयास किया, साथ ही कई नई योजनाओं को भी लागू किया। साथ ही राज्य एवं राष्ट्रीय मलखांब का संगठन का चेयरमेन पद की जिम्मेदारी संभालते हुए वहां भी नई योजनाएं लागू करने की कोशिश की। 1970 के बाद स्पोर्ट्स प्रतियोगिताओं में रेफरी (जज) के रूप में लगातार कई वर्षों तक सक्रिय रहा। इससे मेरा अनुभव समृद्ध हो रहा था।

इस तरह अलग-अलग संगठनों में विविध जिम्मेदारियों को संभालते हुए श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर का भी कार्यभार 1963 से बतौर सचिव एवं संस्थापक सदस्य के रूप में सक्रिय रूप से संभाल रहा था। आगे महामुंबई विभाग मलखांब संगठन की स्थापना की गई और उसका संस्थापक बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर के कई खिलाड़ियों को राज्य स्तरीय शिवछत्रपति पुरस्कार प्राप्त हुए, जिनमें जिमनास्टिक (आर्टिस्टिक)-6 खिलाड़ी, जिमनास्टिक (रिदमिक)- 4 खिलाड़ी, मलखांब (लड़के)– 3 और एक महिला खिलाड़ी का समावेश था। पॉवर लिफ्टिंग में संजीवन भास्करन को 1992 में राष्ट्रीय स्तर का अर्जुन अवार्ड प्राप्त हुआ। यह हम सबके लिए तथा महाराष्ट्र के लिए गौरव का विषय था। आगे मेरे साथ श्रीपवनपुत्र के कई खिलाड़ियों ने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रेफरी (जज) की भूमिका निभाई जिनमें मीनल अरविन्द म्हात्रे, महेंद्र अनंत चेंबूरकर, चंद्रशेखर पाटील, मंजुश्री चिवटे और मंदार दत्तात्रय म्हात्रे (अंतरराष्ट्रीय रेफरी) का समावेश था। 1976 से 2014 तक श्रीपवनपुत्र की ओर से द्विवार्षिक जिमनास्टिक और मलखांब के निमंत्रित राज्य प्रतियोगिताओं का आयोजन हमने 14 बार लगातार किया। इसके लिए चेंबूर के अभिभावक, समाजसेवक, रोटरी क्लब, लायन्स क्लब एवं कई दानदाताओं का सहयोग प्राप्त हुआ। आगे चेंबूर महिला समाज (सिर्फ महिलाओं के लिए), कामगार नगर, कुर्ला में हमने पवनपुत्र की नई शाखाएं खोलीं, जहां जिमनास्टिक का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस काम में रोटेरियन एवं एडवोकेट भोसले, देवदत्त म्हात्रे, डॉ. हळुरकर, तारळकर जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं की हमें काफी मदद हुई। एडवोकेट भोसले आज भी पवनपुत्र से जुड़े हैं।

2010 में दिल्ली में जब कॉमनवेल्थ गेम्स आयोजित किया गया तो, एक नए जोश के साथ मैं अपनी टीम के साथ वहां सहभागी हुआ था। पिताजी सशरीर हमारे साथ नहीं थे मगर उनके आशीर्वाद से हम पवनपुत्र की गतिविधियों को आगे बढ़ा रहे थे। बरसों पहले उन्होंने श्रीपवनपुत्र नामक जो पौधा लगया था अब वह वटवृक्ष बन गया था। इसके चलते आज

भी वे हम सबके लिए वंदनीय हैं। वे हमारी यादों में सदैव मौजूद हैं, कभी दूर, कभी पास, तो कभी अलहदा। इसीलिए 2011 में सभी ने मिलकर उनकी जन्म शताब्दी चेंबूर के गांधी मैदान में बड़े व्यापक स्तर पर मनाई और उन्हें आदरांजलि समर्पित की। पिताजी के चाहने वालों की कमी नहीं थी। सबकी प्रबल इच्छा थी कि रामनाथ पाठारे 'मास्तर' की जन्म शताब्दी बड़े पैमाने पर मनाई जानी चाहिए। इस आयोजन में प्राची, हरेश राणे और अशोक नायगांवकर ने तन, मन धन से हमारा साथ निभाया। लाखों रुपयों का भार इन लोगों ने निस्वार्थ भाव से वहन किया। अनेक मित्रों ने एवं परिवार के सदस्यों ने अपने–अपने हिस्से की जिम्मेदारियों को बखूबी से निभाते हुए उस आयोजन को यादगार बनाया। इसे देखकर सबकी आंखें तृप्त हो गईं। इस बीच अचानक सूचना मिली कि रेवती मौसी का 'वृद्धाश्रम' में निधन हो गया। विजया और मैं हर महीने पनवेल के नेरे सेंटर में उनसे मिलने जाया करते थे। मगर नियति के आगे सबको घुटने टेकना पड़ता है। बहरहाल जो आया है, उसे एक दिन जाना भी है, इस बात को हमें भूलना नहीं चाहिए। रेवती मौसी ने अपने हिस्से की जिम्मेदारी को बखूबी से निभाया था, जिसे आजीवन हम भूल नहीं सकते।

आज उम्र के इस पड़ाव पर मैं जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो लगता है कि- मैंने जिंदगी के हर दिन और हर पल को बड़ी अच्छी तरह से जिया है। कुछ भी लगभग कुछ भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। जिस दिन ने जो दिया, उसका भरपूर लाभ उठाया। शायद इसीलिए जीवन की भयानक गर्मी, लू और सर्दियों को आसानी से झेल सका। आप मित्रों से भी कहना चाहूंगा हूँ कि जिंदगी के इन अनमोल पलों को व्यर्थ ना जाने दिन। जिंदगी को खुलकर जीने के लिए हर व्यक्ति को अपने जीवन में एक हॉबी (छंद) जरूर पालनी चाहिए। स्पोर्ट्स मेरे जीवन का अभिन्न अंग कब और कैसे बन गया, मुझे पता ही नहीं चला।

14

देश के लिए मैंने क्या समर्पित किया ?

दरअसल मेरे जेहन में ये बात इसलिए आ रही है कि 1957 के आस-पास मैं जब चेंबूर हाईस्कूल में 10वीं कक्षा में पढ़ रहा था, तब मेरे मन में एक विचार आया की देश तो आजाद हो गया, मगर आजाद भारत के लिए हमने क्या योगदान दिया और आगे क्या योगदान दे सकते हैं ? आजाद भारत में हमारी भूमिका क्या होनी चाहिए ? क्या हम अपने देश के लिए कुछ कर सकते हैं? बहरहाल मेरी किस्मत के धागे स्पोर्ट्स से जुड़े थे, तो उसी को मिशन मानकर आगे बढ़ता रहा और हजारों विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देता रहा। एक समर्पित क्रीड़ा कार्यकर्ता के रूप में मैनें अपनी पूरी जिंदगी खेल पर न्योछावर कर दी। ये मेरा पेशा ही नहीं, बल्कि मेरा जुनून था। धन कमाने की बजाय हमने विद्यार्थियों को जोड़ा, उन्हें हुनर सिखाया, खेल में माहिर बनाया। देश को नामचीन खिलाड़ी दिए। कई हजार विद्यार्थियों को खेल के प्रति प्रेरित किया। "खेलेगा इंडिया, तभी तो बढ़ेगा इंडिया" आज के इस नारे को हमने पचास के दशक में साकार किया। पिताजी के नक्शेकदम पर चलते हुए मैंने भी जीवन भर अपने हिस्से के सामाजिक धर्म को निभाया। मैं धन से अमीर नहीं था, मगर कर्म से अमीर बन गया था। इसलिए आज भी जीवन में कभी किसी बात का अफसोस नहीं हुआ। स्पोर्ट्स रूपी मिशन को अपनी क्षमतानुसार आजीवन मैं गति प्रदान करता रहा। लगभग बीस हजार विद्यार्थियों को स्पोर्ट्स का ज्ञान दान दिया। मेरा यह कार्य देश सेवा के अंतर्गत आता है या नहीं, ये तो मैं नहीं जानता पर राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्तर

के सैकड़ों खिलाड़ी और कोच हमने तैयार किए, जो अपने साथ-साथ देश का भी नाम रोशन करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। इससे बड़ी सम्पति एक साधारण से गुरु के लिए और क्या हो सकती है ? बदले में कुछ मिला या नहीं इसकी कभी चिंता नहीं की। विद्यार्थियों ने क्रीड़ा के माध्यम से इतना बड़ा सम्मान दिया यही मेरी धन संपदा है। जीवन के इस पड़ाव पर मैं पूरी तरह से आत्मसंतुष्ट हूँ। धन के लालच में मेरे मन में कभी भटकाव नहीं आया। किसी भी प्रकार के लत (व्यसन) ने मुझे कभी स्पर्श नहीं किया। इन सारी गतिविधियों की विजया साक्षी बनी। अब आप लोगों के सामने प्रश्न उपस्थित हो गया होगा कि ये विजया कौन थी ?

विजया मेरी जीवन संगिनी बनी

स्पोर्ट्स मेरे रोम-रोम में बसा था। दिल और दिमाग में हमेशा उसी के सपने बुनता था। इतने बड़े जीवन में ऐसी कई घटनाएं और यादें मेरे जेहन में कैद हैं, जिसे सिलसिलेवार बताना मेरे लिए संभव नहीं हो पा रहा है। वैसे भी सबका जिक्र आवश्यक भी तो नहीं ! प्रारंभ में ही मैंने बताया है कि मैं कोई लेखक नहीं, बल्कि एक स्पोर्टमन के रूप में मैंने अपना पूरा जीवन बिताया, जो वही मेरा पहला प्यार था। वही मेरी सुबहो–शाम थी। इसलिए जब-जब जैसा सुर लगता गया उन्हीं तरानों को छेड़ने की मेरी ये कोशिश है। इस समय जेहन में मंगनी और शादी से संबंधित यादें तार छेड़ रही हैं।

हां तो हम बात विजया की कर रहे थे। आप लोगों के सामने एक प्रश्न उपस्थित हो गया होगा कि ये विजया कौन है? विजया अर्थात मेरी सहचारिणी मेरी जीवन संगिनी, जीवन साथी, जो मूलतः दादर से थी और हमारी रिश्तेदारी से थी। इसलिए हमारी शादी भी आपसी रजामंदी और परिवार की सहमति से हुई। उस जमाने में उसने एल.एल.एम. (LLM) तक की शिक्षा प्राप्त की थी और बीपीटी (बॉम्बे पोर्ट ट्रस्ट) में नौकरी करती थी। हमारी शादी की भी एक मजेदार कहानी है। नौकरी के अलावा मेरे कंधों पर चेंबूर हाईस्कूल पूर्व विद्यार्थी संघ, श्रीपवनपुत्र व्यायामशाला, जिमनास्टिक एसोसिएशन, कोच आदि की जिम्मेदारियां थीं। इन जिम्मेदारियों को संभालते हुए शादी की जिम्मेदारी को मैं ठीक से निभा पाऊँगा, या नहीं? पिताजी के मन में ऐसी धूसर-सी शंका थी। मगर मेरे

जीवन का यह एक ऐसा गीत है, जिसे गुनगुनाए बगैर मैं आगे नहीं बढ़ सकता। 1976-77 का वह दिसंबर-जनवरी का महीना था। चेंबूर हाईस्कूल में क्रीडा महोत्सव का आयोजन किया गया था। उसके लिए ट्रैक बनाने का काम चल रहा था। बच्चों के अलावा मदद के लिए मेरे साथ और कोई नहीं था। चूंकि ये मेहनत का काम था इसलिए इस तरह के काम से लोग वैसे भी दूर भागते हैं। मुझे तो इस तरह के कामों की आदत पड़ गई थी। क्रीडा महोत्सव की तैयारी करते हुए उस दिन फिल्ड पर चूना मार रहा था। 200 मीटर का ट्रैक बनाना था, काफी देर हो चुकी थी। खाना खाने के लिए घर भी जाना था। प्रतियोगिताएं उसी दिन शाम को होनी थीं। पंत सर से यह देखा नहीं गया। उनका घर पास में ही था, इसलिए खाना खाने के लिए वे मुझे अपने घर ले गए। देर शाम को प्रतियोगिताएं जब खत्म हुईं तो मैं घर पहुंचा। घर पहुंचने पर पता चला कि एक व्यक्ति पूरा दिन मेरे इंतज़ार में बैठा रहा। मेरे घर से कुछ दूर कुएं के पास सुबोध देव्हारे के दादा–दादी का घर था। पूछने पर पता चला की सुबोध देव्हारे के पिताजी सुबह से ही मेरा इंतजार कर रहे थे, जो दादर से आए थे। मुझसे मिलने के बाद पिताजी और देव्हारे काफी देर तक आपस में बातें करते रहे। मई महीने में स्कूल की छुट्टियां शुरू हो जाती हैं, इसलिए मेरी और विजया की सगाई मई महीने में करने का फैसला उन लोगों ने किया।

शादी की जिम्मेदारी मैं ठीक से निभा पाऊँगा या नहीं, इस बात को लेकर पिताजी के मन में शंका तो थी ही, बावजूद इसके हाँ, नहीं करते-करते आखिर जनवरी 1977 में विजया के साथ मेरी सगाई हुई और 1977 के मई महीने में शादी भी हो गई। देव्हारे परिवार, स्व. भाऊराव चेंबूरकर के रिश्तेदार थे। आम्रेबाई चेंबूरकर की बहन थी, जो एक सामाजिक कार्यकर्ता थीं। तब शादियां अकसर इसी तरह रिश्तेदारी में होती थीं। शादी को लेकर मैं भी दुविधा स्थिति में था। मुझे वो कहावत याद आ रही है- शादी का लड्डू जो खाए वो पछताए और जो ना खाए वो भी पछताए। पिताजी ने सोचा होगा कि इसकी शादी कर देते हैं आगे पछताना, ना पछताना उसकी किस्मत पर छोड़ देते हैं। एक मई 1977 में शादी के

बाद चेंबूर स्थित हमारे श्री मल्हार निवास में विजया का आगमन हुआ और मेरे नए जीवन की शुरुआत हुई। मेरे जीवन की कश्ती जो स्पोर्ट्स रूपी समुंदर में हलकोरे ले रही थी, वह अब स्थिर हो गई और उसे एक दिशा मिल गई। बल्कि यूं कहें कि जीवन जीने का मुझे एक मकसद मिल गया। सच कहूँ तो, विजया मेरे जीवन की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में मददगार साबित हुई। मेरे सामाजिक जिम्मेदारियों में हाथ बंटाते हुए उसने मेरे जीवन में चार चांद लगा दिया।

शादी के बाद मैनें और विजया ने एक नया जीवन आरंभ किया। मेरे स्पोर्ट्स के जुनून के बारे में वह पहले से ही जानती थी। मेरे पिताजी भी स्पोर्ट्स के गुरु थे, माताजी को इसकी आदत हो गई थी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि परिवार में सभी स्पोर्ट्स के रंग में रंगे हुए थे। विजया ने भी घर-परिवार, नौकरी आदि की जिम्मेदारियों को संभालते हुए स्पोर्ट्स के कामों में मेरे साथ रुचि लेने लगी। वह प्रायः हर इवेंट में मेरे साथ होती थी। इतना ही नहीं राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में जाने के लिए कई बार कतार में खड़े होकर उसने ट्रेन का टिकट निकालने का काम भी बड़े उत्साह से किया था। इस बात का मुझे आज गर्व हो रहा है। हम दोनों कंधे से कंधा मिलाकर पवनपुत्र का एवं अन्य कामों को संभालने लगे थे। मतलब गुजरते वक्त के साथ हम दोनों पति-पत्नी के साथ-साथ एक दूसरे के अच्छे मित्र बन गए थे। एक सच्चा जीवन साथी वही होता है, जिसके साथ आपका दिल, मन और रूह इस कदर जुड़ जाए की, दो जिस्म और एक जान हो जाए। नजरिया साफ सुथरा हो तो दागदार चांद भी मनभावन नजर आता है। हमारा दृष्टिकोण साफ था।

उस दिन की बात मुझे आज गुदगुदा रही है। हमारी शादी को सिर्फ दो ही दिन हुए थे। मई की छुट्टियां चल रही थीं। जिमनास्टिक का कैंप आरंभ हो गया था। शादी के दूसरे ही दिन वेसावकर अपनी हमेशा की आदत के अनुसार मुझे सुबह-सुबह जगाने आ गया। यह देखकर विजया मुस्कुराने लगी। धीरे-धीरे उसको इन सबकी आदत हो गई और उसने पूरी तरह से

अपने आपको मेरी जिंदगी में ढाल लिया। कुछ दिनों बाद से ही वह स्पोर्ट्स की भी जिम्मेदारियों को संभालने लगी थी। इस तरह समय अपनी गति से भागता रहा और हम अपने जीवन में बारी-बारी से कृष्ण, अर्जुन और सारथी की भूमिका समयानुरूप निभाते रहे। जब वो कृष्ण की भूमिका में होती तो मैं अर्जुन बन जाता था। जब वो अर्जुन की भूमिका में होती तो मैं कृष्ण बन जाता था। इस तरह भूमिकाओं को अदल-बदलकर हम दोनों सारथी बनकर जीवन रूपी रथ को आगे बढ़ाते रहे।

कुर्ला से मानखुर्द तक के क्षेत्र की गिनती तब ग्रामीण इलाके में की जाती थी। इनके बीच में हमारा चेंबूर था, वह भी एक गांव ही था। आगे संक्षेप में हम इस परिसर के बारे में जानने की कोशिश करते हैं।

16

कुर्ला, ट्रांबे, माहूल, मानखुर्द का इलाका

आप लोग जानते होंगे कि 'जहां बस्ती, वहां गांव' के सिद्धांत पर चेंबूर को बसाया गया था, जो मेन मुंबई के पूरब में है। चेंबूर के आस-पास तब कई खाड़ियां हुआ करती थीं। खाड़ी के दोनों ओर लोगों की बस्तियां थीं। खाड़ी में भरपूर मछलियां मिलती थीं, इसलिए लोग मच्छी मारी का व्यवसाय का करते थे। धीरे-धीरे चेंबूर की आबादी लगातार बढ़ रही थी। बढ़ती आबादी के कारण खाड़ियों पाटी जा रही थी। यहां के पुराने बासिंदों का कहना है कि खाड़ी में 'चिम्बोरी' केकड़े बड़ी मात्रा में पाए जाते थे। इसी 'चिम्बोरी' शब्द का अपभ्रंश होकर यह इलाका 'चेम्बूर' कहलाने लगा। प्रारंभ में यहां मुख्य रूप से पाचकळसी, आगरी-कोळी, सुतार एवं क्षत्रिय समुदाय के लोग रहते थे। चेंबूर के पास-पड़ोस में जंगल भी थे। दिन ढलते ही सियारों का हुआंना शुरू हो जाता था। सियारों की आवाज शुरू होने से पहले ही गांव के लोग डूबते सूरज की एक झलक पाकर सो जाते थे। आगरी समुदाय के लोग पहले जहां चावल की खेती किया करते थे, वहां अब 'गोल्फ क्लब' बन गया है। अंग्रेजों ने इसे 'बॉम्बे प्रेसीडेंसी गोल्ड क्लब' के नाम से विकसित किया था, जहां राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के गोल्फ मैच खेले जाते थे। चेंबूर नाका के उस पार 'चरई' नामक एक इलाका था, जो आज भी उसी नाम से जाना जाता है। वहां तब ग्रामीण लोग अपने मवेशियों को चराने के लिए ले जाते थे, क्योंकि वहां घास की पैदावर अधिक होती थी। इसलिए उस इलाके का नाम चरई पड़ा था। तब कुछ लोग घास का कारोबार भी करते थे।

आस-पास की बस्तियां ग्रामीण शैली में बनी थीं। इसीलिए आज भी चेंबूर में सूखे कुएं और पुराने घरों के सामने तुळशी वृंदावन देखे जा सकते हैं। चेंबूर के आस-पास जो अन्य इलाके थे उनमें वाडवली, मारवली, माहुल विलेज, घाटला, तुर्भे, चेंबूर कैंप, अमर महल, टिळक नगर, सहकार नगर, वाशी नाका, घाटकोपर, गोवंडी, मानखुर्द और गवानपाड़ा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। आज जो इलाका टिळक नगर कहलाता है, वहां तब खाड़ी हुआ करती थी। इन खाड़ियों में जहाजें चला करती थीं। नमक की खेती और मछली मार का व्यवसाय किया जाता था। इसी तरह माहुल की खाड़ी में भी नमक की खेती की जाती थी। वहां से बैल गाड़ियों में भर-भरकर नमक लाया जाता था। कुछ लोग नमक बेचने का भी व्यवसाय करते थे।

कुर्ला से मानखुर्द तक का इलाका मुंबई के मुकाबले पिछड़ा ग्रामीण इलाका कहलाता था। तब लोग वहां रहने आने से कतराते थे। मानखुर्द में एक बड़ा डम्पिंग ग्राउंड हुआ करता था, जहां पूरे मुंबई शहर का कचरा डम्प किया जाता था, जो आज भी मौजूद है। यातायात की दृष्टि से भी यह इलाका तब बहुत सुविधाजनक नहीं था। बोरीबंदर (सीएसएमटी) से कुर्ला तक सेंट्रल रेलवे रेगुलर रूप से चलती थी। मगर कुर्ला से मानखुर्द तक सन् 1925-26 में दो कोच वाली ट्रेन चेंबूर से कुर्ला तक, दिन में केवल दो बार चलती थी। अब नौ कोचों वाली लोकल ट्रेन छत्रपति शिवाजी महाराज टर्मिनस से पनवेल तक पूरे दिन लगातार चक्कर लगाती है। तब कुर्ला के बाद चेंबूर, उसके बाद गोवंडी और मानखुर्द ये स्टेशन हुआ करते थे। यदि अंतिम ट्रेन छूट जाती तो लोग कुर्ला से चेंबूर तक रेल की पटरियों पर चलते हुए पैदल यात्रा करके चेंबूर पहुंचते थे। कुर्ला से मानखुर्द तक रेल पटरियों के दोनों ओर झुग्गी–झोपड़ियों का जाल बिछता जा रहा था।

एच.डी. पाटील नामक एक प्रसिद्ध डॉक्टर चेंबूर नाके के पास हुआ करते थे, जो गरीबों की सेवा करते हुए प्रतिदिन अठारह घंटे काम करते थे। उनके बारे में कहा जाता है कि उनके हाथ के स्पर्श मात्र से ही लोगों की बीमारियां ठीक हो जाती थीं। 1929 में एक धनी व्यक्ति ने चेंबूर नाका के

पास 'शेठ द्वारकादास त्रिभुवनदास धर्मार्थ दवाखाना' बनवाया था, जिसका लाभ गरीब तपके के लोग लेते थे। देश की आज़ादी से पहले चेंबूर के बच्चे पढ़ाई के लिए कुर्ला, सायन और दादर में जाया करते थे। तब चेंबूर में कई प्रकार के पेड़- पौधे, अमराई और फूलों के बगीचे हुआ करते थे। बच्चे अमराई में आम तोड़ते हुए खूब मस्ती किया करते थे। चेंबूर पोस्ट ऑफिस के पास सांडू गार्डन था, जो आज भी है। वहां सांडू परिवार का आयुर्वेदिक दवाओं का कारखाना था। बगीचे में या सड़कों पर पढ़ने वाले गरीब बच्चों के लिए श्रीमती शांताबाई आम्ब्रे (समाज सेविका) के प्रयासों से 1952 में 'बाल विकास प्राथमिक विद्यालय' (मराठी माध्यम) की स्थापना की गई थी। गणपति उत्सव के दौरान चेंबूर के हर गली- मोहल्ले में उत्सवों की धूम मची रहती थी। चेंबूर में फलों के साथ-साथ फूलों के भी सुंदर बगीचे थे और तब चेंबूर हाईस्कूल और अन्य कुछ जगहों पर विविध प्रकार के फूलों की प्रदर्शनियां लगाई जाती थीं, जिसे देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। हर साल 'फूल दिवस' (फ्लॉवर्स डे) मनाया जाता था। पेड़-पौधों से आच्छादित चेंबूर में गौरैया, कबूतर, कोयल, तोते, कौवे जैसे पक्षियों का बसेरा हुआ करता था। धीरे-धीरे चेंबूर से लगे गोवंडी इलाके में लोग बसने लगे।

चेंबूर में अंग्रेजों ने तब जेल के लिए खास तौर पर 36 एकर की जमीन सुरक्षित रखी थी, जहां 1945 में 'भिक्षुक गृह' बनाया गया। भिक्षुकों को व्यवसायाभिमुख प्रशिक्षण देकर उन्हें रोजगार उपलब्ध करना इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य था। लोग कहते है कि तब मुंबई में भीख मांगने वालों की संख्या अधिक थी। इसी परिसर में 'नवजीवन महिला वसतिगृह' भी था, जो देंह व्यापार करने वाली महिलाओं के पुनर्वसन के लिए बनाया गया था। गुजरते वक्त के साथ अब ये सब बंद हो गए, मगर इनकी निशानियां आज भी देखी जा सकती हैं। धीरे-धीरे चेंबूर का विकास हो रहा था। अतः समय की जरूरत को देखते हुए असिस्टंट पोलिस कमिशनर प्रभाकर मोकाशी के प्रयासों से 'चेंबूर महिला समाज' नौकरीपेशा महिलाओं के लिए पहला वसतिगृह (हॉस्टेल) स्टेशन के पास बनाया गया। उसके बाद नीला करकरे के प्रयास से टिलक नगर स्टेशन के पास महिलाओं के लिए एक और

हॉस्टेल बनाया गया। विकास के तहत ही चेंबूर में तेल की कंपनियां बनीं और राष्ट्रीय केमिकल फर्टिलाइजर की भी स्थापना हुई। इनके बन जाने के बाद चेंबूर को 'गैस चैंबर' और प्रदूषण युक्त उपनगर माना जाने लगा। इसलिए संभ्रांत लोग यहां रहने आने से कतराते थे। यहां एक पहाड़ी थी, जिसकी मिट्टी लाल थी, इसलिए इस इलाके को 'लाल डोंगर' कहा जाता था। इलाका तो अब भी है मगर अब वो पहाड़ी नहीं है। लाल डोंगर' को लोग 'लिटिल मलबार हिल' कहते थे। उस दौर के चेंबूर में लोगों को बसाने की मुहिम सरकार द्वारा चलाई जा रही थी। पुराने रीति रिवाज के अनुसार गांव बसाने से पहले लोग मंदिर या अन्य धार्मिक स्थल बनाते थे। चेंबूर में सभी जातियों और धर्मों के पूजा स्थल हैं, जैसे आणिक गांव का 'शंकर मंदिर', चेंबूर नाका पर 'दक्षिणमुखी हनुमान मंदिर', चेंबूर स्टेशन के पास 'भुलिंगेश्वर मंदिर' (देउलवाड़ी) आदि। अंग्रेजों द्वारा जनसंख्या बढ़ाने के उद्देश्य से 'मारवली चर्च' बनाया गया, जिसके आस-पास बड़ी संख्या में ईसाई धर्म के लोग लोग बस गए। पेस्तमसागर और छेड़ानगर इलाके जब विकसित हुए तब वहां बड़ी संख्या में दक्षिण भारतीय लोग रहने आए। परिणामतः 'कार्तिकेय मंदिर', 'अहोबिल मठ', 'श्रृंगेरी मठ' आदि का निर्माण हुआ। स्टेशन के पास भारतीय संविधान के शिल्पकार डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर की प्रतिमा अम्बेडकर पार्क में आज भी स्थित है, जिसके सामने एक 'बुद्ध विहार' है। 'जामा मस्जिद' और 'जैन मंदिर' भी चेंबूर में बनाए गए। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सैनिकों के लिए बनाए गए बैरक, समय के साथ जीर्ण-शीर्ण हो गए थे। विभाजन के बाद पाकिस्तान से आए सिंधी शरणार्थियों के लिए यहां सिंधी कॉलोनी विकसित की गई, जिसे 'चेंबूर कैम्प' के नाम से जाना जाता है। चीता कॅम्प में अधिकाशतः गरीब लोगों की बस्तियां तब भी थी, आज भी है।

चेंबूर और गोवंडी के बीच घाटला विलेज की पहचान 'मुंबई का गार्डेन' के रूप में थी। यहां के बगीचों से बड़ी मात्रा में फूल मुंबई के विभिन्न इलाकों में पहुंचाए जाते थे। माहुल और तुर्भे के बीच लगभग 6 मील के परिसर में फूलों की खेती की जाती थी। चीकू के बगीचे, अमराई, फल, फूल,

सब्जियों आदि की खेती लोग करते थे, क्योंकि ये जमीन उपजाऊ थी। इसके आस-पास के बारह गांवों में चेंबूर एक मध्यवर्ती इलाका था। तब तुर्भे बेट (द्वीप) मुंबई का एक और अविकसित उपनगर था। मेन मुंबई शहर की सीमा सायन तक निर्धारित की गई थी, जो आज भी बरकरार है। उसके बाद कुर्ला, चूनाभट्टी, चेंबूर इलाका था। पश्चिम में यह सीमा माहिम-बांद्रा तक निर्धारित थी, जो आज भी बरकरार है। सायन से चेंबूर नाका सड़क मार्ग से जुड़ा था। चेंबूर नाका से दो रास्ते पूर्व और दक्षिण दिशा की ओर जाते थे। पूर्व में गोवंडी, मानखुर्द, तुर्भे आदि इलाके थे। मानखुर्द में नेवी का बेस पॉइंट बनाया गया था। चेंबूर घाटला में फूलों के कई बगीचे थे जहां गावंड, म्हात्रे जैसे समाज के लोग बड़े पैमाने पर बागवानी किया करते थे, जिससे इस क्षेत्र में कई बगीचे देखे जा सकते थे। दक्षिण दिशा में माहुल और माहुल की पहाड़ी इलाका था, जिसके आस-पास जंगल थे। इन पहाड़ों और जंगलों में सियार, लोमड़ी, बाघ, चीता जैसे हिंसक प्राणी हुआ करते थे, जहां अब तेल रिफाइनरी बन गई है। रिफाइनरी और आरसीएफ के कर्मचारियों की कॉलनियां भी यहां बनाई गई। संक्षेप में कहें तो तब के चेंबूर और आज के चेंबूर में हर दृष्टि से जमीन आसमान का अंतर देखा जा सकता है। सत्तर के दशक तक चेंबूर पूरी तरह से विकसित हो गया था।

मुझे याद आ रहा है जयंत गायकवाड़ नामक वह विद्यार्थी और उसके साथी जो माहुल से चेंबूर हाईस्कूल तक पैदल आते थे। रास्ते में आम के बगीचों से आम तोड़कर खाते थे और डालियों से लटक कर उछल कूद और करतब किया करते थे। ये बच्चे रास्ते में पेड़ों की जटाओं (पारंबी) पर लटककर झूलते हुए आसानी से 3 - 4 किमी. की पैदल यात्रा खेलते हुए पार कर लेते थे। करतब कला में जयंत इतना निपुण था कि उसने अपनी कक्षा के कई बच्चों को पेड़ों से लटककर समरसॉल्ट, बॅक समरसॉल्ट जैसी कलाबाज़ी सिखाई। बड़ी सहजता से वह यह सब कर लेता था। व्यायामशाला का अभ्यास ये बच्चे रास्ते में बिना किसी उपकरण के ही कर लेते थे। इसी जयंत गायकवाड ने सफलता अर्जित करते हुए शिवछत्रपति पुरस्कार जीता, जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

माहुल के पास जो पहाड़ी इलाका था वह विविध प्रकार के पेड़-पौधों से समृद्ध था। इसे 'गार्डन ऑफ बॉम्बे' कहा जाता था। भाऊ फाटक ने अग्रणी भूमिका निभाते हुए कई वर्षों तक चेंबूर हाईस्कूल में 'पुष्प महोत्सव' का आयोजन किया करते थे, जो आज भी मुझे याद है। फूलों की रंगोली देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते थे। देवनार में कई बच्चे फूलों से रंगोली बनाते थे, जो लोगों के आकर्षण का विषय हुआ करता था। मामूली खर्च पर ये फूल महोत्सव, रंगोली आयोजित किए जाते थे। इसके कला, हुनर और मेहनत की जरूरत पड़ती थी। दुर्भाग्य से आज फूलों के उन बगीचों के नामोनिशान मिट गए और वहां घनी बस्तियां बस गई हैं। अब तो स्थानिक लोगों को भी फूल खरीदने पड़ रहे हैं। शहरीकरण और फ्लॅट सांकृति के चलते धीरे-धीरे त्योहार, उत्सव, जुलूस, झाँकियां, प्रदर्शनियां आदि की रौनक कम होते गई। चेंबूर, माहुल, देवनार में कभी जंगल रूपी जो वृक्ष संपदा थी, वह भी खत्म हो गई। हरियाली युक्त चेंबूर हमारी आँखों के सामने प्रदूषण युक्त उपनगर बन गया। ये हमारे लिए अचरज का विषय था। अमराई, चीकू के बगीचे, नारियल के पेड़, वटवृक्ष, पीपल, इमली के पेड़, बोर, करवंद आदि से ये क्षेत्र कभी हरा भरा था।

चेंबूर जो कभी गांव था आज पूरी तरह से मुंबई का विकसित उपनगर बन गया है। 'जॉय हॉस्पिटल', 'ज़ेन हॉस्पिटल', 'इनलैक्स हॉस्पिटल', 'सुराना-सेठिया हॉस्पिटल' जैसे कई आधुनिक अस्पताल, नर्सिंग होम, चौबीसों घंटे खुली रहने वाली दवा की दुकानें, गरीबों के लिए लायंस क्लब क्लीनिक, एम्बुलेंस सेवाएं और यहां तक कि पशु चिकित्सालय भी आज के चेंबूर में मौजूद हैं। साठ-सत्तर के दशक में बनी म्हाड़ा (महाराष्ट्र हाउसिग डेवलपमेंट बोर्ड) कॉलनियों के कारण मिडल क्लास नौकरीपेशा लोगों की संख्या भी धारे-धीरे यहां बढ़ती गई। इस तरह बढ़ती आबादी के कारण चेंबूर की गिनती अब महंगे उपनगर के रूप में होने लगी है। सामाजिक कार्यकर्ता एवं महाराष्ट्र राज्य के तत्कालीन मंत्री हशु आडवाणी जी के नेतृत्व में 1962 में 'विवेकानंद एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना की गई। इसके माध्यम से कई स्कूल, कॉलेज और अन्य संगठन भी विकसित हुए। चेंबूर के

निकटवर्ती इलाकों में अणुशक्ति नगर, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस, आचार्य कॉलेज, शाह एंड एंकर कॉलेज, मराठी विज्ञान परिषद, डायमंड गार्डेन और राज कपूर का 'आर.के. स्टूडियो' आदि के कारण चेंबूर का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। कई मशहूर कलाकारों, राजनीतिज्ञों, डॉक्टर्स, इंजीनियरों की यह जन्म एवं कर्म भूमि भी बन गई।

हशु आडवाणी, रामकृष्ण चेम्बूरकर, नारायणराव आचार्य, वि. ना. पूरव, गुरुदास कामत, पार्वती परिहार जैसे कई समाज सेवकों के अलावा कला, साहित्य, संस्कृति से जुड़े साहित्यकारों, पत्रकारों और कलाकारों ने चेंबूर के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सबके नामों का जिक्र यहां संभव नहीं है, पर उन सबका योगदान अनमोल था।

राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारे खिलाड़ी

श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर ने 1982 के एशियाड (दिल्ली) से लेकर 2010 के कॉमनवेल्थ (राष्ट्रमंडल) खेलों तक मुख्य रूप से जिम्नास्टिक (रिदमिक) जिम्नास्टिक (आर्टिस्टिक), पावरलिफ्टिंग और मल्लखांब में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई। एथलिटों ने भी काफी अच्छा प्रदर्शन किया। विभिन्न संगठनों द्वारा आयोजित राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं में भी हमारे खिलाड़ियों ने अपनी विशेष पहचान कायम की। कम्प्यूटरीकरण का दौर आरंभ हो चुका था, इसलिए तकनीकी प्रदर्शन में भी वे आगे रहे। निश्चित रूप से इसे मुंबई के कई अभिभावकों और मुंबई महानगर पालिका तथा एजुकेशन डिपार्टमेंट का समर्थन प्राप्त था। हमारे प्रशिक्षकों का भी महत्वपूर्ण योगदान उन्हें मिला, तब ये सब संभव हो पाया, वरना मेरे अकेले के बस की यह बात नहीं थी।

आगे चलकर श्रीपवनपुत्र को चार प्रकार के अनुदान (ग्रांट) मिलने लगे थे। इसमें एजुकेशन डिपार्टमेंट (बीएमसी), डिस्ट्रिक्ट स्पोर्ट्स ऑफिसर (कांदिवली) डायरेक्टर ऑफ स्पोर्ट्स महाराष्ट्र (पुणे) का समावेश था। सरकारी अनुदान मिलने से हमारे हौसले बुलंद थे। इस आर्थिक सहयोग के बल पर व्यायामशाला के इमारत की मरम्मत की गई, जो अति आवश्यक था। छोटे भाई अनिल के माध्यम से जिमॅनास्टिक तथा व्यायामशाला के लिए नए आधुनिक उपकरण (पुली, मशिन्स) बनवाए गए, जो विद्यार्थियों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुए। राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं की दृष्टि से आधुनिक

उपकरणों को खरीदना समय की जरूरत थी। आगे चलकर इसके अच्छे नतीजे भी हमें देखने को मिले। हर माता-पिता अपने बच्चों के विकास का सपना देखते हैं, फिर चाहे वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो। स्पोर्ट्स शिक्षक के रूप में मैंने अभिभावकों के चेहरे पर बच्चों को लेकर सपनों को साकार होते देखा है। साथ ही निराशा के पलों का भी अनुभव किया है। पवनपुत्र के विद्यार्थियों और खिलाड़ियों ने संस्था को जिस ऊंचाई पर पहुंचाया है, वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। इसीलिए आज खुशी के गीत गा पा रहा हूँ। दुनिया की सबसे अच्छी किताब हम स्वयं होते हैं, खुद को समझ लो तो कई समस्याओं का समाधान हो जाता है। आज इसे मैं महसूस कर रहा हूँ।

1982 में दिल्ली में आयोजित जिमनास्टिक प्रतियोगिता के समय मैं वहां MAGA - (Maharashtra Amature Gymnasium Association) की तरफ से उपस्थित था। उस प्रतियोगिता में मो. ध. गुर्जर सर के पाँच खिलाड़ी (लड़कियां) भारत की ओर से जिमनास्टिक में सहभागिता कर रहीं थीं। पुणे की संजीवनी करंदीकर (चिवटे) भारत की कॅप्टन थी। इन सभी खिलाड़ियों को अंतरराष्ट्रीय खेल का अनुभव देने के लिए कुछ वर्ष पहले पाकिस्तान एवं अन्य एशियाई देशों के अलावा रूस में भी भेजा गया था। वहां इन लोगों ने उन देशों के ओलंपिक एथलिटों को देखा और भरपूर ज्ञान अर्जित किया। उसी का परिणाम देखने को मिल रहा था और महाराष्ट्र आगे बढ़ रहा था। इसी 1982 के एशियाड में श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर के खिलाड़ी मंजुश्री चिवटे और महेंद्र चेंबूरकर का समावेश था। इस प्रतियोगिता से लगभग दो वर्ष पहले उन्हें रूस एवं अन्य देशों में प्रशिक्षण शिविर के लिए भेजा गया था, जहां उन्होंने टीम लीडर की भूमिका निभाई। खेल के साथ-साथ मंजुश्री ने अपनी पीएच.डी. तक की पढ़ाई भी की। यह हमारे लिए गौरव का विषय था। मगर 1992 में उसकी रोड एक्सिडेंट में मृत्यु हो गई, जो एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। महेंद्र चेंबूरकर ने भी खेल के साथ अपनी स्नातक तक की शिक्षा पूरी की। वह राज्य स्तरीय प्रतियोगिता में मलखांब का स्वर्ण पदक विजेता बना। बाद में उसे शिवछत्रपति पुरस्कार भी मिला। उसके बाद उसे रेलवे में नौकरी भी मिल गई। एशियाड पूर्व

प्रतियोगिता में जिमॅनास्टिक्स में उसने 7 में से 6 स्वर्ण पदक जीतकर रेकॉर्ड बनाया। जर्मन कोच 'स्टुक्स' अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी के रूप में उसे टीम में शामिल करना चाहते थे, मगर कुछ तकनीकी कारणों से वह टीम का हिस्सा नहीं बन पाया। इस बारे में जब आयोजकों से पूछा गया तब जवाब में भारतीय आयोजकों ने कहा कि टीम चुनने और खिलाड़ियों के अंतिम चयन का अधिकार उनका अपना होता है। इसे लेकर जब प्रश्न उपस्थित किए गए, तो मैं स्वयं एक कोच के रूप में वहां उपस्थित था। मेरे साथ भ. मा. पंत सर, गुर्जर एवं रामदास कल्याणपुरकर, डॉ. सुरेश देशपांडे (अमरावती) भी उपस्थित थे। हमारे लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। 1969 में ओरिएंटेशन (प्राथमिक – NIS) का कोर्स मैंने पूरा किया ताकि सरकारी कोच बन सकूं पर दुर्भाग्य से यह संभव नहीं हो पाया। इस तरह कई बार खिलाड़ियों के साथ अन्याय होते हुए मैंने देखा है और बर्दास्त भी किया है, क्योंकि व्यवस्था के आगे हम मजबूर होते हैं। इन मुद्दों को लेकर समाचार पत्रों और मराठी मासिकों में कई लेख छपे मगर इसका कोई परिणाम नहीं निकला। इस बात का आज दुख हो रहा है।

मनोज मोरे (स्ट्रॉन्ग मॅन ऑफ इंडिया) जैसे कई विद्यार्थियों ने पावर लिफ्टिंग में नाम कमाया। अशोक कदम, चेंबूरकर और कई अन्य खिलाड़ियों ने विदेश दौरा (दुबई आदि) भी किया। रिदमिक जिमॅनास्टिक में पल्लवी, कोमल पाटील, भाग्यश्री राणे और जस्मिता म्हात्रे ने राष्ट्रीय स्तर पर कई स्वर्ण पदक जीते। 2005 तक जीत का यह सिलसिला इसी तरह चलता रहा। जिमनास्टिक के कारण मलखांब का क्रेज कम हो रहा था। तब मलखांब को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता नहीं मिली थी, इसलिए खिलाड़ियों का झुकाव जिमनास्टिक की ओर बढ़ रहा था। सागर सावंत नामक खिलाड़ी ने जिमनास्टिक और मलखांब करते-करते पावरलिफ्टिंग में भी अपना करियर बनाया। अनिल थोरात ने मलखांब और पावर लिफ्टिंग में नाम रोशन किया। चेंबूर स्थित बेगर्स होम एवं गांव से आए हुए विद्यार्थी भी इन खेलों में रुचि लेने लगे थे। हमने उन्हें भी अपनी संस्था में प्रवेश दिया। अनिल थोरात ने इस तरह के बच्चों से संपर्क किया और उन्हें खेल की

गतिविधियों से जोड़ा। तब तक इन बच्चों को इस प्रकार के खेलों के बारे में विशेष जानकारी नहीं थी। इन बच्चों के भविष्य को देखते हुए हमने उन्हें प्रोत्साहन दिया, जिनमें से कई बच्चे सफल भी हुए।

एक और बात याद आती है कि संदीप जोगळेकर रोमन रिंग पर प्रायः अभ्यास करता था। कहीं से देखकर वह रिंग पर डबल बॅक मारने लगा। तब वह 7वीं या 8वीं कक्षा में रहा होगा। उसका ये खतरनाक करतब देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो गए। उसे पास बुलाकर पुनः ऐसा प्रयोग नहीं करने की हमने उसे कसम दिलाई, क्योंकि डबल बैक का ऐसा ही मामला एक बार पटियाला नेशनल गेम में हुआ था। पंजाब-हरियाणा का एक लड़का प्रतियोगिता में डिसमाउंट डबलबॅक करते हुए पीठ के बल गिरा और उसे मेनेनजाइटिस का दौरा पड़ गया। प्रतियोगिता के दौरान दो दिन के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई। आगे उसके माता-पिता ने कोच पर मुकदमा कर दिया। उसके बाद दो साल तक उस टीम की कोचिंग करने के लिए कोई कोच तैयार नहीं हुआ। हमारा प्रयास संदीप को जोखिम लेने से परावृत्त करना था।

इसी दौर में जवाहर विद्या भवन का एक विद्यार्थी जयंत गायकवाड ने सफलता अर्जित करते हुए शिवछत्रपति पुरस्कार जीता, जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। स्पोर्ट्स के आधार पर उसे नौकरी भी मिल गई। सिर्फ नौकरी ही नहीं बल्कि शिक्षा जगत में भी स्पोर्ट्स के आधार पर विशेष कोटा का प्रावधान किया गया है, जिसका लाभ कई विद्यार्थी-खिलाड़ियों को मिला। ये सुविधा अब भी जारी है। महेंद्र चेंबूरकर को स्पोर्ट्स के आधार पर रेलवे में नौकरी मिली। ऐसे और भी कई विद्यार्थियों को खेल के आधार पर सरकारी नौकरियां मिली जबकि कई खिलाड़ियों का शिक्षा स्तर सामान्य था। कल्पेश जाधव (साने गुरुजी विद्यालय, सांताक्रुज) ऐसा ही एक सामान्य विद्यार्थी था जो म्युनिसिपल स्कूल में पढ़ता था, वह भी शिवछत्रपति पुरस्कार विजेता बना। आगे चलकर देश विदेश में मलखांब करते हुए उसने अपना नाम रोशन किया। आज उसकी उपजीविका का

साधन भी खेल है। समय के साथ जिमनास्टिक की जड़ें धीरे-धीरे महाराष्ट्र के कई जिलों में फैल चुकी थी। राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भी महाराष्ट्र का नाम अग्रणी पर था, बल्कि आज भी है। औरंगाबाद, मुंबई, सांगली में एरोबिक्स, एक्रोबॅटिक्स, रिदमिक्स का प्रचार-प्रसार महेंद्र चेंबूरकर, डॉ. मकरंद जोशी (औरंगाबाद) और वर्षा उपाध्ये ने किया। नाशिक में यशवंत व्यायामशाला में श्री पाटील ने मलखांब प्रशिक्षण का एक केंद्र शुरू किया था। वहां के बच्चों ने इस पहल का स्वागत किया। भविष्य में जिमनास्टिक शुरू करने के लिए भी उनके प्रयास जारी हैं। पवनपुत्र के कुछ ऐसे एक्सपार्ट और होनहार खिलाड़ी थे, जिन्हें राज्य और राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में तकनीकी कारणों से सहभागी नहीं होने दिया। इस बात का दुख मुझे आज भी है। इसमें आशुतोष पोतनीस और महेंद्र चेंबूरकर का नाम उल्लेखनीय है। प्रतियोगिताओं के दौरान चारुता आठल्ये (श्री समर्थ व्यायाम मंदिर, दादर), श्रावणी वैद्य, अनस शेख जख्मी हो गए थे। नियति ने आघात किया और चारुता आठल्ये बाद में विकलांग हो गई जिससे उस बेचारी का बहुत नुकसान हुआ। वो और अक्षय बोरकर अंतरराष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी बन सकते थे, इतनी क्षमता उनमें थी। आज इस बात को याद करते हुए बहुत बुरा लग रहा है।

विदेशों में लड़कियों के लिए एक ही जगह पर नौ BEAM उपलब्ध होते हैं। यदि इस पर गौर करें तो हमें हमारी कमियों का एहसास होता है। हमें अपनी कमियों को दूर करने के लिए रास्ता निकालना होगा। जिस तरह से स्कूल की कक्षा में एक समय में एक साथ 40 से 60 विद्यार्थी पढ़ते हैं, उसी तरह की कुछ व्यवस्था खेलों के लिए अपेक्षित है। शहरों के साथ-साथ ग्रामीण इलाकों में भी इसका बीजांकुरण होना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थी अधिक उत्साही एवं शारीरिक रूप से सक्षम एवं मजबूत होते हैं, मगर दुर्भाग्य से उन्हें ये सारी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। शहर में रोज आना-जाना या निवास व्यवस्था, आर्थिक एवं सामाजिक कारणों से उन्हें संभव नहीं हो पाता, इसलिए ग्रामीण बच्चे इच्छा होते हुए भी आगे नहीं बढ़ पाते। एस.सी. व्यास ने रशियन लड़कियों के जिम प्रशिक्षण संबंधी एक

पुस्तक मुझे दी थी, जिसका उपयोग लड़कियों के प्रशिक्षण के लिए हुआ। इसी पुस्तक को पढ़ते हुए मंजुश्री ने स्वर्ण पदक जीता। बाद में उसे शिवछत्रपति पुरस्कार भी मिला। यह उसकी बुद्धिमत्ता और लगन की जीत थी। सुनंदा पंडित नामक टीचर जो चेंबूर हाईस्कूल में हिंदी और संगीत पढ़ाती थीं, उन्होंने मंजुश्री को गोल्ड मेडल प्राप्त करने में काफी मदद की। इन उपलब्धियों को याद करते हुए मैं सभी खिलाड़ियों को आज सलाम करता हूँ।

भगवंत माधव पंत सर के नेतृत्व में 1979 में आर.सी.एफ. चेंबूर में आयोजित राष्ट्रीय प्रतियोगिता में महेंद्र विजेता रहा। कोलकाता में आयोजित राष्ट्रीय प्रतियोगिता में जिमनास्टिक में उसने 7 में से 6 गोल्ड मेडल जीतकर रेकॉर्ड कायम किया। इससे पहले वह 1976 से मलखांब में राष्ट्रीय चैंपियन था और उसे महाराष्ट्र सरकार का 'शिवछत्रपति पुरस्कार' मिल चुका था। इतना अनुभवी खिलाड़ी होने के बावजूद 1982 के एशियाड प्रतियोगिता में उसे अनफ़िट घोषित कर दिया गया था। जबकि उसका फिटनेस 90% से अधिक था। 'क्या अन्य खिलाड़ियों की इतनी तैयारी थी?' जब मैंने उनसे ये प्रश्न किया तो तब कोई ठोस जवाब नहीं मिला। इसी तरह एक बार मंजूश्री के साथ भी हुआ था। जबकि वह राष्ट्रीय खिलाड़ी थी। तीसरी कक्षा से ही वह पवनपुत्र की विद्यार्थी थी। ऐसे और भी घटनाएं हैं मगर जो बीत गया उसका जिक्र कितना सार्थक होगा? बहरहाल लड़कियों के लिए अब नए नियम लागू कर दिए गए थे, जिसके तहत अब लड़कियों को बिना हाथ लगाए कोचिंग देना था। ये किसी चुनौती से कम नहीं थी, बावजूद इसके हमने अपनी संस्था में इसका सफल प्रयोग किया। नीलाक्षी पुरव, मंजुषा सांडू, संगीता देसाई जैसे लड़कियां हमारी संस्था में प्रशिक्षण ले रहीं थीं। आगे चलकर ये सभी लड़कियां राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी बनीं और महाराष्ट्र का नाम रोशन किया।

1979 में आरसीएफ में नेशनल जिमनास्टिक चैंपियनशिप प्रतियोगिता का जिक्र ऊपर किया गया है। इसकी सारी जिम्मेदारी पंत सर

ने अकेले संभाली थी। इस बात से रामदास कल्याणपुरकर खफा हो गए। वे चाहते थे कि सभी को मिलकर यह काम करना चाहिए था। पंत सर का इस तरह अकेले काम करना उन्हें अच्छा नहीं लगा। आगे 1982 में एशियाड खेल प्रतियोगिताएं दिल्ली में होने वाली थी, इसके लिए तैय्यारियां करनी थी। मगर कल्याणपुरकर ने संगठन के सचिव पद से इस्तीफा दे दिया। तत्पश्चात सोशल सर्विस लीग (परेल) के कार्यकर्ता व्यास, काळे, धोत्रे आदि ने अपने समर्थन से अमरावती के हनुमान प्रसारक मंडल के डॉ. सुरेश देशपांडे को सचिव और मुझे कोषाध्यक्ष पद की जिम्मेदारी सौंपी। इस निर्णय से भी कुछ लोग असहमत थे। पंत जी को संगठन का अध्यक्ष बनाया गया था। सार्वजनिक संस्थाओं में ये सब होता रहता है, इसे अधिक तुल न देते हुए जीवन जिस रूप में सामने आया उससे दो-दो हाथ करते हुए हम आगे बढ़ते रहे। नकारात्मकता के दलदल में सकारात्मकता के फूल खिलाने की हमारी कोशिशें जारी थी। अतः आगे बढ़ना हमारी प्राथमिकता थी।

बीते कुछ वर्षों में विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्राप्त सफलता के कारण पवनपुत्र का प्रचार-प्रसार व्यापक स्तर पर हो गया था, जिससे बड़ी संख्या में विद्यार्थी आने लगे। तब नए विद्यार्थियों की वार्षिक संख्या लगभग 900 के आस-पास हो जाति थी। वैसे भी चेंबूर में पवनपुत्र की तुलना में अन्य व्यायामशालाएं नहीं थीं। मासिक 150 विद्यार्थी हो जाने के बाद हमें प्रवेश बंद कर देना पड़ता था। पवनपुत्र की जगह 30 x 40 फीट की थी। इतनी छोटी- सी जगह में FX भी फिट नहीं किया जा सकता था। आगे सरकारी मदद से व्यायामशाला के लिए पतरे की शेड बनवाई गई। कुछ साल पहले चेंबूर स्टेशन के पास 'चेंबूर महिला संघ' में लड़कियों के लिए विशेष रूप से जिमनास्टिक के प्रशिक्षण की 'अस्थायी' व्यवस्था की गई थी, जिसमें 60-70 लड़कियां प्रशिक्षण ले रही थीं। राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं में इनमें से कई लड़कियों ने सहभागिता भी की, मगर सुविधाओं के अभाव में यहां मलखांब अब पूरी तरह से बंद हो गया है।

1982 में दिल्ली में आयोजित एशियाड राष्ट्रीय प्रतियोगिता के बारे में

हमें कोई खास सूचना नहीं मिली थी। उस समय हमारी संस्था आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रही थी। बावजूद इसके हम उसमें पूरे दमखम से भाग लेना चाहते थे, इसलिए आवश्यक खर्च का एक बड़ा हिस्सा मैंने वहन किया। यहां तक की चिल्ड्रेनस किट्स एवं अन्य इक्विपमेंट का भार भी कई बार मैंने व्यक्तिगत तौर पर वहन किया। विद्यार्थियों से मिलने वाली फीस से इतना बड़ा खर्च सम्भव नहीं था। जैसे-जैसे संस्था बड़ी हो रही थी, हमारी जिम्मेदारियां भी बढ़ती जा रही थीं। दिन रात एक करते हुए कार्यकर्ता एवं विद्यार्थी संस्था को आगे बढ़ाने के लिए मेहनत कर रहे थे। इसके परिणाम भी प्रतियोगिताओं के माध्यम से हमें मिल रहे थे। इन सबके कारण वातावरण भी उत्साहजनक था। इस पूरी प्रक्रिया में हमारे खिलाड़ियों को अच्छा अनुभव मिल रहा था, जिससे अंतरराष्ट्रीय स्तर के जिमनास्ट तैयार करने में हमें सफलता मिली। यही हमारी तपस्या का फलित था।

1982 एशियाड के बाद 1992 में फिर से दिल्ली में जूनियर एशियाड का आयोजन किया गया था, जिसमें आशुतोष पोतनीस, प्रीतिगंधा पोतनीस आदि का समावेश था। कोमल पाटिल, मयुरा मोकाशी और मंजुश्री चिवटे (रेफरी) थे। पटियाला में आशुतोष ने ही कैंप में बच्चों के लिए FX सेट लगाए थे। वह एक बार में 400 सिटअप करता था। डबल बॅक के लॅडिंग के समय, पैरों में लचीलापन बनाए रखना मुश्किल होता है। मगर कठोर अभ्यास के बल पर वह सबकुछ कर लेता था। वहां चार खिलाड़ियों की टीम के साथ आशुतोष को रिजर्व खिलाड़ी के रूप में रखा गया, जबकि उसका समावेश टीम में होना चाहिए था। इसके बाद भारत की ओर से विदेश जाने वाली टीम में मंजुश्री का समावेश होना चाहिए था, मगर नहीं हुआ। मंजुश्री ने बार-बार इसका आग्रह भी किया, मगर सरकारी चयन समिति ने उसका चयन टीम में नहीं किया। हताश होकर वह ऑफिसियल कोचेस और मेरे सामने आकर अपनी व्यथा कहने लगी। यही बात प्रकाश रेवाळे के साथ भी हुई जो बाद में नेवी ऑफिसर बना। खिलाड़ियों के साथ हुए अन्याय के कई घटनाओं का मैं साक्षी बना, मगर सरकारी अधिकारियों के सामने हम कई बार हतबल हो जाते थे। ऐसी ही एक घटना याद आ रही है, जब आशुतोष के

कोच का 1992 में रोड एक्सिडेंट में निधन हो गया था। इस सूचना से आशुतोष हताश हो गया। उसे बड़ा सदमा लगा और वह यूनिवर्सिटी की परीक्षा के दौरान अपना पेपर नहीं लिख पाया। बाद में उसका जिमनास्टिक भी छूट गया। अब वह एक इंटरनेशनल स्कूल में फुटबॉल का कोच है। स्कूल की टीम के साथ उसने कई बार विदेश का दौरा भी किया। मंदार म्हात्रे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर का जज (रेफरी) बन गया। ऐसे कई खिलाड़ियों की खेल से प्राप्त सफलता का जिक्र किया जा सकता है।

1995 में मुझे 'शिवछत्रपति राज्य क्रीडा पुरस्कार' मा. शरद पवार जी के हाथों मिला। ये सब पिताजी एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से संभव हो रहा था, इसका एहसास मुझे तब भी था और आज भी है। हमारे कई खिलाड़ियों को स्पोर्ट्स कोटे से सरकारी नौकरियां मिली। कुछ खिलाड़ी स्कूल, कॉलेजों में स्पोर्ट्स टीचर के रूप में कोचिंग करने लगे। कुछ लोग विदेश चले गए और वहीं बस गए। कुछ लोगों ने व्यक्तिगत तौर पर ट्रेनिंग देना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने निजी तौर पर अपना व्यावसायिक जिम खोल लिया। ऐसे भी कुछ खिलाड़ी थे जिनका खेल और प्रतियोगिता के दौरान आपस में प्रेम हो गया और उन लोगों ने शादियां कर ली। जो नाम याद आ रहे हैं उनमें हरेश राणे, प्रशांत, कोमल, प्राची आदि का समावेश है। ऐसी कई सुखद अनुभूतियां हैं जो मन को सुकून दे रही हैं।

योग्य खिलाड़ी को सही समय पर मौका मिलना चाहिए, ऐसा हमारा आग्रह हुआ करता था मगर ये हमेशा संभव नहीं हो पाया। खेल के प्रति लगाव होना अलग मुद्दा है और खेल को शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखना अलग बात है। खिलाड़ियों को मिलने वाली प्रसिद्धि तथा आर्थिक लाभ की दृष्टि से देखना काफी अलग मुद्दा है। श्रीपवनपुत्र के कई खिलाड़ियों को इस संघर्ष से गुजरना पड़ा है, लेकिन एक संस्था के तौर पर हमने हमेशा तटस्थ भाव से विचार किया, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। FIG (Federation International Gymnastica) के अनुसार 8 वर्ष में लड़कियों की और 12 साल में लड़कों की जिमनास्टिक का प्रशिक्षण पूर्ण हो जाना चाहिए,

साधारणतः ऐसी अपेक्षा होती है। इसलिए नए खिलाड़ियों पर उनकी क्षमताओं को देखते हुए उन पर लगातार निगरानी रखनी पड़ती है। ऐसा करने से ही श्रीपवनपुत्र के कई खिलाड़ी 'शिवछत्रपति पुरस्कार' के विजेता बने। खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता (फ़्लेक्सिबिलिटी / स्ट्रेंथ) को देखकर उन्हें उस तरह के खेल उपलब्ध कराए जाने चाहिए, इसका हमने पूरा ख्याल रखा।

जिमनास्टिक की नींव पक्की होते ही हम लड़कों के साथ लड़कियों को भी वेटलिफ्टिंग तथा पावर लिफ्टिंग की ओर मोड़ने में सफल हुए। मलखांब, जिमनास्टिक इन दोनों खेलों की स्ट्रेंथ और प्रेजेंटेशन की साम्यता को देखते हुए अदल बदलकर लड़के और लड़कियों द्वारा ये प्रयोग करवाए गए। जैसे रोप की लड़कियों से रिदमिक जिमनास्टिक भी करवाया गया। राजेश्वरी पिल्लई इसका जीवंत उदाहरण है जिसे रोप मलखांब में राष्ट्रीय प्रतियोगिता में 8 गोल्ड पदक मिले। कोई सरकारी संगठन इस काम को नहीं कर सकती मगर एक समर्पित संस्था कर सकती है, इसे हमने करके दिखाया है। सरकारी संगठन अपने नियम, पुरस्कार, सिफारिश, आर्थिक लाभ आदि के बंधनों से बंधे होते हैं। उनके अधिकारियों का पूरा ध्यान कुर्सी, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता, विदेश टूर आदि पर अधिक होता है। परीक्षा लेना, खिलड़ियों की उपलब्धियों पर खुद को बड़ा साबित करना, संबंधित मंत्री को खुश करना आदि उनका प्रमुख लक्ष्य होता है। ऐसे में ये सरकारी संगठन मानवी शरीर में समाहित गुणों को परखने में कितना सक्षम होते हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है।

मलखांब जो प्रारंभ से ही बेंत के खंबों के सहारे खेला जाता था। कालांतर में लड़कियों के लिए इसके स्वरूप में बदलाव किया गया। तदनुसार लड़कियों को रोप के सहारे मलखांब करने का निर्देश खेल महासंघ की ओर से जारी किया गया। जो खिलाड़ी अब तक बेंत के खम्बे के सहारे मलखांब करते थे उन्हें रोप के सहारे खेल प्रदर्शन करना, इतना आसान नहीं था। खेल के इस बदलते स्वरूप के कारण कई खिलाड़ियों का

नुकसान भी हुआ। वे राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग नहीं ले सके। नए सिरे से उन्हें रोप ट्रेनिंग लेनी पड़ी। वीणा माने और आदिती कुलकर्णी जैसी खिलाड़ियों को प्रतियोगिताओं से बाहर होना पड़ा। इस समस्या के समाधान के लिए कुछ वर्षों तक हमने उन्हें नए सिरे से प्रशिक्षण दिया और वे भी लगातार अभ्यास करती रहीं, परिणामतः उन्हें गोल्ड मेडल मिला। ये दोनों लड़कियां पढ़ाई में भी होशियार थीं। आगे वीणा माने को तो मुंबई यूनिवर्सिटी से भी (कॉम्प्यूटर में) गोल्ड मेडल मिला। श्रीपवनपुत्र का एक और प्रतिभावान खिलाड़ी सुनील गंगावणे, जिसे Demonstration नहीं आता था, उस पर हमने काफी मेहनत की। आखिर किसी तरह वो रशिया जाने वाली टीम में शामिल तो हो गया हो, मगर वहां भी गोरी चमड़ी की नाराजगी का उसे शिकार होना पड़ा।

साल 2006 में एक अंग्रेजी अखबार में छह महीने के बच्चे के लिए 'जिमनास्टिक ट्रेनिंग की दशा–दिशा' क्या होनी चाहिए इसके बारे में एक विस्तृत फीचर आर्टिकल प्रकाशित हुआ था। यह लेख अनहिता काशीनाथ के प्रयास से छपा था, जो स्वयं एक कोच थी। इसका नतीजा ये हुआ कि इस पर गंभीरता से विचार विनिमय करने के लिए तीन बार- 2009, 2011, 2014 में निमंत्रित राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं के दौरान चर्चा सत्रों का आयोजन किया गया। परिणामतः मुंबई में कुछ जगहों पर टॉडलर्स एवं किड्स उपकरण आ गए और प्रशिक्षण भी शुरू हो गए। इसके अलावा उन्नत खिलाड़ियों के लिए कंप्यूटर प्रोग्रामिंग की भी व्यवस्था की गई, लेकिन यह सिलसिला सिर्फ अमीर बच्चों तक ही सीमित रहा। जरुरतमंद विद्यार्थी विभिन्न कारणों से यहां तक पहुँच ही नहीं पाए। लगभग 10 साल पहले श्रीपवनपुत्र में इसका सफल प्रयोग हमने किया था। उसके बाद अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स में भी यह प्रयोग हमने किया। मगर बाद में कुछ तकनीकी कारणों से इसे बंद कर दिया गया है, जिससे काफी निराशा हुई। बड़ी मुश्किल से किसी योजना को शुरू किया जाता है और उसका बंद हो जना बड़ी पीड़ादायी घटना होती है। इसे हमसे बेहतर कौन समझ सकता है?

2010 में आयोजित कॉमनवेल्थ गेम्स में जिमनास्टिक टीम के भारतीय कोच के रूप में हरीष परब और संजोग ढोले ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। आगे चलकर उन लोगों ने कई अन्य खिलाड़ी और कोच तैयार किए। वे इतने कुशल थे कि विदेशी कोच भी उनसे सलाह-मशविरा करते थे। उनके अनुसार प्रत्येक खेल का अपना एक शास्त्र एवं तकनीक होती है। जैसे क्रिकेट की लोकप्रियता अन्य खेलों की तुलना में कहीं अधिक है। मगर लोकप्रियता के आधार पर किसी भी खेल की महत्ता कम नहीं आंकी जा सकती! मगर जिम्मेदार पदों पर बैठे लोग जब इस बात को भूलकर उल्टा–सीधा प्रश्न करते हैं, तब पीड़ा होती है। ऐसी ना जाने कितनी बातें और घटनाएं दिल में कैद हैं मगर मेरा मकसद सिर्फ और सिर्फ स्थिति में सुधार लाना है, आज नहीं तो कल सही। मेरे सीने में नहीं, तेरे सीने में ही सही, लेकिन आग होनी चाहिए। मुद्दे को ज्वलंत बनाए रखना चाहिए।

मजे की बात यह है कि ऐसे तमाम खिलाड़ियों के लिए पवनपुत्र ने काफी कुछ किया मगर आज कितने लोग अपनी मातृ संस्था अर्थात पवनपुत्र से जुड़े है? प्रशिक्षण एवं प्रतियोगिता के दौरान तो कई लोग जुड़े रहते हैं मगर आगे 5-10 सालों बाद विविध कारणों से सब दूर हो जाते हैं। कोई किसी को याद नहीं रखता। यह स्वाभाविक है। मेरा मानना है कि ऐसे लोगों को अपनी मातृ संस्था से भी जुड़ाव रखना चाहिए, ताकि अगली पीड़ी भी इसका लाभ ले सके। हम अपने गुरु (पंत, खोपकर, फाटक) को आज भी याद करते हैं, ऐसा क्यों? क्यों उन्हें याद करते हैं? इसे संस्कार कहा जा सकता है, आत्मिक लगाव कहा जा सकता है। हमारे यहां कई बार ऐसा भी हुआ है जब लड़कियां, लड़कों को ट्रेनिंग दिया करती थीं। आशुतोष की प्रॅक्टिस मंजुश्री करवाती थी। लड़कियां, लड़कों को ट्रेनिंग दे रही हैं इसे देखकर पास-पड़ोस के लोग ताने मारते थे या तंज कसते थे, जिसके चलते कुछ लोगों ने व्यायमशाला आना छोड़ दिया। ये अनुभव भी हमने लिए हैं। इसे पुरुष प्रवृत्ति का इगो कहा जा सकता है। आज मुझे अपने कई विद्यार्थियों की याद आ रही है जैसे पल्लवी चेंबूरकर, जस्मिता म्हात्रे, कोमल पाटील, हरप्रीत कौर, ललिता मेहता, प्रशांत पाटील, चंद्रशेखर पाटील

आदि। कुछ लोग संस्था से जुड़े रहे, तो कुछ लोग बीच में ही छोड़कर चले गए। एक खिलाड़ी को तैयार करने में, उसे सक्षम बनाने में कितने साल लग जाते हैं? इसकी कल्पना आप लोग कर सकते हैं। इस तरह से जीवन में कई अच्छे–बुरे, खट्टे- मीठे अनुभव आएं। आज इस उम्र में भी तमाम समस्याओं का अंत नहीं हुआ है। चेंबूर गांवठान का 200 साल पुराना हमारा घर अब भूत बंगला बन गया है, जो कभी हमारे परिवार का प्यारा आशियाना हुआ करता था। वर्तमान समय में पवनपुत्र की स्थिति भी डांवाडोल है। 85 साल की उम्र में मैं सिर्फ मार्गदर्शन दे सकता हूँ, सफलता के लिए दुवाएं दे सकता हूँ। इसके अलावा फील्ड पर उतरकर कुछ कर पाने में मैं असमर्थ हूँ। श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की व्यवस्था फिलहाल एड. शरद भोसले (रोटेरियन) एवं देवदत्त म्हात्रे सम्भाल रहे हैं। प्रकाश रेवाळे वहां के प्रमुख शिक्षक हैं। बरसों पहले श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर रूपी जो पौधा लगाया गया था, आज वह वटवृक्ष बन गया है। समाज और राष्ट्र को अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है। मेरे लिए इससे बड़ी खुशी और क्या हो सकती है? भविष्य के लिए मेरी शुभकामनाएं है कि नए जोश के साथ युवा खिलाड़ी एवं कार्यकर्ता सामने आएं और श्रीपवनपुत्र के इस सामाजिक व्रत को आगे बढ़ाएं। कल इस खेल में हम रहे या नहीं, मगर ये खेल उसी तरह चलते रहना चाहिए।

18

किड्स इक्विपमेंट्स

श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर में प्रतियोगिताओं की दृष्टि से खिलाड़ियों को तैयार करने में कई प्रकार के नए-नए प्रयोग किए गए। 2009 के निमंत्रित राज्य प्रतियोगिता में हमने किड्स इक्विपमेंट्स के बैनर लगाए थे, ताकि इस संकल्पना का प्रचार प्रसार हो सके। विदेशों में इसका काफी प्रचलन है, मगर हमारे देश में यह संकल्पना नई थी। कुछ लोगों ने इस संकल्पना का जोरदार स्वागत किया। हमारे विद्यार्थी ऋषिकेश म्हात्रे तथा अपर्णा शिंदे ने इसका खूब प्रचार-प्रसार किया। इससे शहरी अभिभावकों में भी उत्सुकता जाग गई थी। वे अपने बच्चों को नई पद्धति से जिमनास्टिक सिखाना चाहते थे। हमें इस बात का फख्र है कि हमने भारत के कई शहरों में किड्स इक्विपमेंट्स नामक संकल्पना को पहुंचाया। इसके साथ ही व्यायामशाला, जिमनास्टिक का मूल खोजने का हमारा प्रयास सफल हो रहा था। नए दौर के साथ खेलों में भी कंप्यूटर और तकनीकी का प्रयोग बढ़ गया था। कई लोगों ने गूगल से किड्स इक्विपमेंट्स के बारे में जानकारी प्राप्त करना शुरू कर दिया। उसके कुछ प्रिंट आउट कई व्यायामशालों तक पहुंचाए गए थे। जबकि ऋषिकेश और अपर्णा ने लगभग 20 हजार रुपए खर्च करके टोडलर किड्स (Toddlers Kids) से संबंधित विदेशी पुस्तकें मँगवाई और 10 महीने से 8 साल तक के बच्चों के लिए अपना नया जिम शुरू किया। यह प्रयोग मुंबई के वरली में पहली बार हुआ। उसके बाद घाटकोपर और माटुंगा में भी हुआ। फिर तो पूरे भारत भर में यह कन्सेप्ट

फैल गया। दिल्ली से चेन्नई तक लगभग 10 शहरों में इसकी गूंज सुनाई दी। ऋषिकेश और अपर्णा ने इस नए प्रोजेक्ट के साथ अपना नयाा काम शुरू किया। यह कोई सरकारी योजना नहीं थी, ना ही किसी असोसिएशन या संगठन का प्रोग्राम था। दुनिया में खेल के प्रति हो रहे बदलावों को देखते हुए खेल को नए नजरिए से देखने का प्रयास था। इसे बुद्धि का विकास कह सकते हैं, जो खुद को दुनिया से जोड़ने की नई पद्धति थी। किस उम्र से बच्चों को खेल में शामिल किया जाए इसके प्रति जन जागृति का यह एक सार्थक प्रयास था। इस योजना को सरकारी स्तर पर लागू करने के लिए हम लोग लगातार प्रयास कर रहे थे। सफलता मिली या नहीं, यह मुद्दा दोयम है, मगर हमने अपनी कोशिश शिद्दत से जारी रखी, इस बात का आज समाधान है। आगे भी स्पोर्ट्स कार्यकर्ताओं को इस सामाजिक मिशन को आगे बढ़ाना है, यह मानते हुए कि कल खेल में हम रहें या ना रहें, मगर खेल के उत्कर्ष के लिए इस मिशन को आगे बढ़ाना है।

बोया पेड़ बबुल का, तो आम कहां से खाय...

स्पोर्ट्स को लेकर सरकारी स्तर पर जिस तरह से काम किया जाता था, वह निराशाजनक था। इतने वर्षों बाद आज भी स्थिति में खास सुधार नहीं हुआ है। स्पोर्ट्स से संबधित सारी सरकारी एजेंसियां सिर्फ खानापूर्ति का काम करती हैं। यही मेरा आजतक का अनुभव रहा है। राज्य स्तर या राष्ट्रीय स्तर पर जब किसी बड़ी प्रतियोगिता या खेल महोत्सव का आयोजन किया जाता है, उसी दौरान ये एजेंसियां सक्रिय हो जाती हैं और आनन फानन में एक ईवेंट सम्पन्न करने में अपनी ऊर्जा लगाती हैं। बाकी के समय में ये निष्क्रिय होती हैं। इनमें समर्पण की भावना से काम करने का जज़्बा नहीं होता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं के दौरान जब खिलाड़ियों के चयन की बारी आती है, तो उसमें भी अलग तरह की राजनीति की जाती है। खेल महोत्सवों के दौरान भ्रष्टाचार के जो मामले उजागर हुए हैं, उसे मीडिया ने समय-समय पर उजागीर किया है जिसे हम लोग बेहतर जानते हैं। देश के कई राज्यों में खेल के स्टेडियम बनाएं गए हैं, खेल के इक्विपमेंट्स लगाए गए हैं, प्रशिक्षण की व्यववस्था भी की गई है, मगर अन्य राष्ट्रों के मुकाबले आज हमारी क्या स्थिति है ? होनहार और क्षमतावान खिलाड़ियों के निर्माण में सरकार की व्यवस्था कितनी कारगर सिद्ध हुई है ? क्या इस बाबत हम गंभीर हैं या सिर्फ घोषित ईवेंट की खानापूर्ति कर रहे हैं। ऐसे कई प्रश्न मन में उठते तो हैं पर हम सबकी अपनी सीमाएं हैं। क्या ग्रामीण स्तर पर खेलों के उत्कर्ष के लिए हम सुनिश्चित योजना के तहत

काम कर रहे हैं? पवनपुत्र जैसी कई निजी संस्थाएं जब बेहतर प्रदर्शन कर सकती हैं तो सरकार क्यों नहीं ? बड़ी प्रतियोगिताओं के दौरान खिलाड़ियों के चयन में जो भेदभाव किया जाता है, उससे कौन वाकिब नहीं है? इसका अनुभव मैं कई बार कर चुका हूँ।

संत कबीर दास का एक दोहा मुझे याद आ रहा है -

'करता था सो क्यों किया
अब करी क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबुल का,
तो आम कहां से खाय।'

अर्थात– जो करना था सो कर दिया, उसे लेकर क्या पछताना? पेड़ बबुल का बोया है तो उस पर कांटे ही उगेंगे, आम कहां से आएंगे? मेरा मानना है कि खिलाड़ियों के निर्माण प्रक्रिया में, निजी संस्थाओं को टिकाए रखने में गंभीरता से काम किया जाएगा तब सकारात्मक रिजल्ट सामने आएंगे। इस प्रक्रिया में जब हमारी कोई ठोस भूमिका ही नहीं है, तो उसके सकारात्मक परिणाम कहां से आएंगे? इसका तात्पर्य यह है कि सरकारी व्यवस्था यदि अपनी जिम्मेदारियों को गंभीरता से नहीं निभाती है तो, उसे अच्छे परिणाम कहां से और कैसे मिलेंगे ? राज्य तथा राष्ट्रीय खेल असोसिएशन और सरकारी तंत्र जब तक आपसी तालमेल के साथ गंभीरता से काम नहीं करेंगे, तब तक हमें सकारात्मक परिणाम देखने को नहीं मिलेंगे। ऐसी स्थिति में हमारे खिलाड़ियों की तुलना विदेशी खिलाड़ियों से करना कितना न्यायोचित है? क्या खेल असोसिएशन या सरकारी व्यवस्था इन मुद्दों पर गंभीरता से विचार कभी करेंगी? मैं यहां सिर्फ इंगित कर रहा हूँ ताकि संबंधित लोग इस मुद्दे पर गौर करें।

हमने अर्थात श्रीपवनपुत्र ने आज तक जिम्नास्टिक, मलखांब, आसन को लेकर जो कार्य किए हैं उसके परिणाम सबके सामने हैं। ऐसा नहीं हैं की सरकारी स्तर पर कुछ किया नहीं जाता, बहुत कुछ किया जाता गया है, मगर संबंधित मंत्री और अधिकारी बदलते ही दृश्य बदल जाता है। सरकारी

कर्मचारियों के कार्य शैली पर अधिक बात ना करें, तो बेहतर है, इसे आप सुधि पाठक बेहतर जानते हैं। बावजूद इसके इतना जरूर कहना चाहूँगा की देश की भौगोलिक परिसीमा और जनसंख्या को देखते हुए आजादी के इतने सालों बाद अभी बहुत कुछ करना बाकी है। जब हम बीज बोते हैं तो उससे फल की अपेक्षा तो जरूर करते हैं। मगर उस पौधे के विकास के लिए समय से खाद, पानी, सूर्य प्रकाश, रख-रखाव, योग्य माली आदि की उचित व्यवस्था करनी होती है। तब जाकर भविष्य में वांछित फल मिलता है। बीज रूपी बच्चों का परवरिश तथा संस्कार जब सुनियोजित ढंग से होगा तब देश का भविष्य समृद्ध होगा। बच्चे वो बीज हैं जिन्हें खेल रूपी ज़मीन में यथासमय, यथायोग्य भूमि में अंकुरित होने का मौका दिया जाना चाहिए। यथासमय उन्हें पोषक तत्व देना चाहिए, तब देश को अच्छे खिलाड़ी मिलेंगे। अतः माता-पिता, व्यवस्था और संबंधित संस्थाओं को अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सचेत एवं जागृत रहने की जरूरत है। विकसित राष्ट्रों में जिस तरह से खेलों को बढ़ावा दिया जाता है या अन्य सुविधाएं मुहैय्या की जाती हैं, उसी तरह से हमारे देश भी किया जाना चाहिए तब जाकर अपेक्षित परिणाम सामने आएंगे। हमारे सामने इस समय भारत में होने वाले आगामी ओलंपिक का लक्ष्य है। इतनी बड़ी चुनौती को लेकर आज हम कहां खड़े हैं? इस पर अभी से ही गंभीर चिंतन की आवश्यकता है, अन्यथा ओलंपिक का आयोजन करने वाले एक और देश हम बन तो जाएंगे, मगर हमारे खिलाड़ियों की उपलब्धियां क्या होगी ? यह हमारे लिए इस समय महत्वपूर्ण मुद्दा है। विकसित देशों में खेलों से संबंधित जो संस्थाएं हैं, उनकी कार्यशैली, कोचिंग व्यवस्था, खिलाड़ियों के लिए पोषक आहार वातावरण आदि का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उस स्तर की व्यवस्था का हमारे यहां नितांत अभाव है, इसे हमें स्वीकार करना ही होगा। हमारे यहां खेल से संबंधित उपक्रमों का व्यापक प्रचार-प्रसार तक नहीं किया जाता। जबकि इसका व्यापक विस्तार एव प्रचार- प्रसार हर राज्य के खेल संगठनों एवं शिक्षा संस्थानों के स्तर पर किया चाहिए। मुंबई जैसे महानगर में ऐसे सैकड़ों विद्यालय एवं कॉलेज मिल जाएंगे जिनके पास खेल के लिए योग्य

मैदान भी नहीं हैं। तो क्या ऐसे संस्थानों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को खेल से वंचित हो जाना चाहिए ? ग्रामीण स्तर पर खेल से सम्बंधित संरचनाएं नहीं हैं, इसके लिए कौन जिम्मेदार है? इसमें बच्चों का क्या दोष है ? क्या ये उनके भविष्य से खिलवाड़ नहीं है ? क्या इसे नसीबी फितरत मानकर हम अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाएंगे ? देश के कुछ राज्यों में अच्छे स्पोर्ट्स इंस्टिट्यूट हैं, मगर उनके बारे में व्यापक स्तर पर लोगों के पास विस्तृत जानकारी का अभाव है। यह भी एक हकीकत है। इस तरह के स्पोर्ट्स इंस्टिट्यूट की जानकारी जब हर राज्य एवं जिला में होगा तब देश में अंतरराष्ट्रीय स्तर के हजारों खिलाड़ी तैयार होंगे। हमारे यहां प्रतिभाओं की कमी नहीं है। जिस तरह के प्रयोग तथा योजनाएं क्रिकेट के लिए की जाती हैं, उसी तरह की योजनाएं एवं प्रयोग अन्य खेलों के लिए भी किए जाने चाहिए। यह हम सबके लिए एक बड़ी चुनौती है।

शहाजी राजे भोसले क्रीड़ा संकुल (अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स)

शहाजी राजे भोसले क्रीडा संकुल उर्फ़ अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स मेरे जीवन का वो पन्ना है, जिससे मैंने काफी उम्मीदें लगा रखी थी। सरकारी व्यवस्था द्वारा शुरू किए गए इस क्रीड़ा संकुल से खेल गतिविधियों को लेकर एक उज्ज्वल भविष्य के सपने खिलाड़ियों ने और हमारे जैसे खेल प्रेमियों ने सजाए थे। मैंने और कुछ अन्य साथियों ने अपना अनमोल समय और अथक परिश्रम इस क्रीडा संकुल की स्थापना तथा इसे कार्यान्वित करने में दिया। क्रीड़ा संकुल के स्थापना के बाद बृहन्मुंबई जिला जिमनास्टिक संगठन की ओर से पंत सर और मैंने अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स के ललित कला भवन और क्रीड़ा प्रतिष्ठान में जिमनास्टिक शुरू करने का प्रस्ताव 1992 में दिया था। इसका जवाब हमें 1994 में मिला। कई कठिनाइयों एवं कागजी प्रक्रियाओं को पार करते हुए अंततः वर्ष 1998 में इस सेंटर में जिमनास्टिक शुरू हुआ। अनुबंध आदि की प्रक्रिया पूरी करने के बाद बृहन्मुंबई जिमनास्टिक संगठन को भी छोटी-सी जगह प्रारंभ में दी गई। मगर कुछ वर्षों बाद इसे वापस ले ली गई। इसका जिक्र हम आगे करेंगी।

1998 में अनुमति मिल जाने के बाद जिला संगठन, महाराष्ट्र जिम्नस्टिक्स संगठन, श्रीपवनपुत्र एवं जवाहर विद्या भवन के पास उपलब्ध अतिरिक्त क्रीड़ा सामग्री हमने अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स के तल मंजिल पर स्थित टेबल टेनिस हॉल में रखवाया। वहां के तत्कालीन नगर सेवक जयवंत

परब और शैक्षणिक कार्यकर्ता श्रीराम मंत्री जी के संपर्क में हम लगातार बने हुए थे, ताकि कागजी कार्रवाई पूरी हो सके और जिम्नस्टिक्स के लिए आवश्यक सुविधाएं सरकार की ओर से उपलब्ध हो सके। इस बीच विद्यार्थियों और खिलाड़ियों के बीच इसके प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ कर दिया।

1982 के दिल्ली एशियाड के बाद, मुंबई महानगर पालिका ने मुंबई के उपनगरों में दो बड़े खेल स्टेडियम बनाए। मुलुंड में 'कालिदास क्रीडा संकुल' और अंधेरी में शहाजी राजे भोसले क्रीड़ा संकुल (अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स)। मुंबई में भव्य खेल स्टेडियम होने चाहिए इसके लिए कई सालों से हम जैसे क्रीड़ा प्रेमी एवं खिलाड़ी प्रयासरत थे। इसे लेकर 1974 से मुंबई महानगर पालिका जिला संगठन के माध्यम से मैं भी लगातार संपर्क एवं पत्राचार कर रहा था। अंततः 1992 में यह सपना साकार हुआ। अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स शुरू होने के कुछ दिन पहले ही मैं अपनी शिक्षकी पेशे की नौकरी से सेवानिवृत्त हो गया था। इसलिए इस नई जिम्मेदारी को लेकर मैं काफी उत्साहित था। सेवानिवृत्ति के बाद मेरे पास अब अतिरिक्त समय भी था। अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स की गतिविधियों को यथायोग्य आकार देने के लिए हम संबंधित फ़ाइलें लेकर सुबह 9 बजे से पहले मेयर बंगले, दादर पहुंच जाते थे। वास्तव में देखा जाए तो अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स के कामकाज को सुचारु ढंग से शुरू करने के लिए सरकारी अधिकारियों की ओर से हमें आमंत्रित किया गया था, लेकिन इसे शुरू करने में काफी साल लग गए। 1997 से अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स के स्टेडियम में जिमनास्टिक सेंटर के निर्माण कार्य शुरू हुआ और 2006 में जाकर पूरा हुआ। बने बनाए स्टेडियम में जिमनास्टिक की गतिविधियों को शुरू करने में क्या इतना समय लगना चाहिए? इससे क्या साबित होता है? बावजूद इसके महाराष्ट्र सरकार द्वारा की गई इस पहल की सभी ने दिल खोलकर तारीफ की। मुंबई में इस तरह के राज्य स्तरीय स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स की आवश्यकता बहुत सालों से महसूस की जा रही थी, जो अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स के रूप में पूरी हुई। अन्य खेलों के साथ-साथ जिम्नास्टिक को बढ़ावा देने के लिए

हमारी संस्था को भी वहां जगह दी गई थी, जिससे हम बेहद खुश थे।

अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में जिमनास्टिक शुरू करने के लिए हमारे पवनपुत्र सेंटर में जो अतिरिक्त क्रीड़ा सामग्री थी, उसे हमने अंधेरी तक पहुंचाया। साथ ही MAGA (Maharashtra Amature Gymnasium Association) से प्राप्त होने वाली अनुदान राशि, जवाहर विद्या भवन (RCF) और श्रीपवनपुत्र के भी कुछ अनुदान राशि का उपयोग इस सेंटर के लिए किया गया, ताकि ये प्रतिष्ठित सेंटर सुचारु ढंग से काम कर सके। हमारी संस्था (पवनपुत्र) को यहां एक सहयोगी संस्था के रूप में कार्यान्वयन की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। जिमनास्टिक प्रशिक्षण के लिए महाराष्ट्र के पूर्व क्रीड़ा संचालक पांडुरंग ज्ञानोबा भूरे ने बृहन्मुंबई जिला संगठन को आमंत्रित किया था। संगठन के अध्यक्ष भगवंत माधव पंत सर और भूरे एक दूसरे के दोस्त थे, इसलिए प्रशिक्षण का काम बिना किसी बाधा के आगे बढ़ता गया। प्रारंभ में कई महीनों तक इस सेंटर को विद्यार्थी ही नहीं मिल रहे थे। इस तरह विद्यार्थियों के इंतजार में 6 महीने गुजर गए। इस दिशा में सरकारी स्तर पर कुछ काम नहीं होते देख हमने आस-पास के स्कूलों एव संस्थाओं का दौरा करने का प्लान बनाया और गंभीरता से इस पर काम किया।

इतने बड़े और प्रतिष्ठित स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में विद्यार्थी नहीं आ रहे थे, यह सबके लिए चिंता का विषय था। ऐसे में चेंबूर की एक कंपनी में काम करने वाले श्री छत्रे की बेटी अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स की पहली विद्यार्थी बनीं। विद्यार्थियों को स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स एवं जिमनास्टिक सेंटर की जानकारी देने के लिए मैंने अपनी मारूती कार निकाली और अंधेरी के दो दर्जन से अधिक स्कूलों में जाकर दो दिनों तक लगातार प्रचार-प्रसार किया। इस काम में मेरे साथ श्रीराम मंत्री, विद्यानिधी स्कूल की प्रिंसिपल भी साथ थे। विलेपार्ले के लोकमान्य सेवा संघ से प्रबोधनकार ठाकरे स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स तक के स्कूल, कॉलेज, स्पोर्ट्स संस्थाओं में हम लगातार जाते रहे। इस प्रक्रिया में हमारे कुछ विद्यार्थियों ने डेमो भी दिया। इस अथक

परिश्रम के कारण आखिर कुछ विद्यार्थी मिले और इस सेंटर का काम आरंभ हुआ। इसमें सुहास लोहार, जगदीश शिर्के (सरकारी कोच) का भी सहयोग प्राप्त हुआ। बाद में हरीश परब भी इस काम में जुड़ गया।

वास्तव में अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स और बृहन्मुंबई जिला जिमनास्टिक संगठन के साथ मिलकर काम करने का जब प्रस्ताव हमारे पास आया तब पुराने अनुभवों को देखते हुए हमने समझौता अनुबंध (एग्रीमेंट) करने के लिए उनसे अनुरोध किया। इसके तहत 1997 में पहला समझौता एग्रीमेंट (अनुबंध) किया गया। सरकारी शर्तों के अनुसार हर 2 साल में इस अनुबंध का नूतनीकरण करना आवश्यक था। इस काम में श्री मनोहर जोशी (तत्कालीन महापौर) का भरपूर सहयोग हमें मिला, तब जाकर यह कागजी प्रक्रिया पूरी हो पाई। इस तरह से दोनों संस्थाओं का अनुबंध तीन बार सुचारु रूप से हुआ। मगर बाद में जो नए अधिकारी और नए मेयर (महापौर) आए वे अनुबंध करने से टालमटोल करने लगे। कई बार फॉलोअप करने पर यह कहते हुए उन लोगों ने अपना विरोध जताया कि, "लगता है आप लोग ओलंपिक में जाकर पदक जीतने वाले हो? इसलिए हमें इतना परेशान कर रहे हो।" इस तरह की और भी कई बातें हमें सुननी पड़ी। सरकारी महकमे की ओर से इस तरह के निराशा जनक सुर हमारे हौसलों को पस्त कर रहे थे। इसके अलावा स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स के अधिकारियों के साथ बैठकों के लिए हमें चेंबूर से अंधेरी तक जाना पड़ता था। वहां मीटिंग के मिनिट्स भी मुझे लिखने पड़ते थे। मतलब कई तरह की परेशानियों का हमें सामना करना पद रहा था। एक बार फीस वृद्धि को लेकर हमने अधिकारियों को प्रस्ताव भेजा, तो उसे स्वीकार नहीं किया गया। मतलब एक तरह से हमें अपमानास्पद स्थिति से गुजरना पड़ रहा था। बावजूद इसके खेल के उत्कर्ष के लिए हम ये सब सहते रहे। यहां तक कि पहले तीन वर्षों तक वहां के प्रशिक्षकों का वेतन श्रीपवनपुत्र के अकाउंट्स से चेक द्वारा दिया गया। सरकार की ओर से कोई फंड रिलीज नहीं किया गया।

विदेशी खेल उपकरणों का समावेश अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में किया जाना चाहिए, इस तरह के सुझाव अभिभावकों की ओर से आने लगे। इस संदर्भ में GFI के साथ 1992 से पत्राचार किया गया। मतलब पत्राचार एवं केंद्र के प्रबंधन आदि का काम भी अब नए सिरे से हम पर लाद दिया गया था। भारत सरकार के 25:75 की योजनानुसार उस समय 12 लाख रुपयों के फंड की हमें आवश्यकता थी। इसके लिए कई सांसदों से सांसद फंड के लिए प्रयास भी हमने किया, मगर सफलता नहीं मिल रही थी। उमा भारती जी तब केन्द्रीय क्रीड़ा मंत्री थीं। श्री प्रमोद महाजन जी से मिलकर हमने अपनी पीड़ा बताई। इसके बाद श्रीराम मंत्री जी के माध्यम से हमने श्री वेदप्रकाश गोयल जी से संपर्क किया और एक घंटे के भीतर उन्होंने राज्य जिम्नस्टिक के संगठन के नाम पर 12 लाख रुपयों का सांसद फंड मंजूर कर दिया, जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। 2003 में दिल्ली से प्राप्त इस फंड का विनियोग अंधेरी तथा चेंबूर के सेंटर के लिए किया गया।

1992 के एशियाड (दिल्ली) खेल महोत्सव के दौरान श्रीराम मंत्री से हमारा परिचय हुआ था। मंत्री जी का हमें काफी सहयोग मिला, जिसे हम कभी भुला नहीं सकते। फंड तो आ गया मगर अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में जो व्यवस्थापक थे उनकी लापरवाही से अभी तक क्रीड़ा सामग्री नहीं आई थी, जो दुर्भाग्यपूर्ण बात थी। हमें अब एक अलग तरह की चिंता सताने लगी थी। मगर संतुष्टि इस बात की थी कि इस सेंटर से राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी तैयार हो रहे थे, जिन्होंने कई राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में सहभागिता की। धीरे-धीरे जिला संगठन के प्रयासों को बगल देते हुए इस केंद्र का संयोजन ललित कला प्रतिष्ठान द्वारा किया जाने लगा। सारी परेशानियों एवं अपमानस्पद स्थितियों के बावजूद श्रीराम मंत्री एवं वेदप्रकाश गोयल जी द्वारा जो सहयोग एवं समर्थन मिला उसे आजीवन हम भुला नहीं सकते।

इसी बीच 2001 में चेंबूर के गांधी मैदान में निमंत्रित राज्य स्तरीय स्पोर्ट्स प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जो काफी सफल रहा। इतने

उत्साह एवं जोश के साथ आयोजित होने वाली इस राज्य स्तरीय क्रीड़ा प्रतियोगिता के लिए अमेरिका के डॉ. संजय जोशी द्वारा एक लाख रुपयों की सहायता राशि मिली थी, जिसमें से अस्सी हजार रुपये अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स के लिए खर्च किए गए। लेकिन 2004 के बाद जो प्रमुख अधिकारी आए उन लोगों ने हमें अंधेरी सेंटर से बाहर का रास्ता दिखाया। श्री मनोहर जोशी जी से मिलकर अपनी पीड़ा बताई मगर उनकी भी अब उम्र हो चुकी थी। इस बीच श्री पंत जी ने सूचना दी कि पैसों के मामले में अंधेरी सेंटर में अब कोई हमारी बात नहीं सुनेगा। अंततः जिस अंधेरी सेंटर को स्थापित करने में हमने अपना खून-पसीना एक किया था, लगातार दस वर्षों तक हम अथक परिश्रम करते रहे, वहीं से हम बेदखल कर दिए गए। सेंटर तो गतिमान हो चुका था, मगर निराशा के अलावा हमें कुछ नहीं मिला। उस सेंटर के कामकाज को तत्कालीन लोगों के हाथों सौंपकर हमें खाली हाथ अपने पवनपुत्र में वापस लौटना पड़ा। यह हमारे लिए बेहद दुखदाई घटना थी।

सांताक्रुज हवाई अड्डे के पास मुंबई नगर पालिका (मनपा) की ओर से स्पोर्ट्स केंद्र स्थापित करने का प्रस्ताव पुनः हमारे पास आया, जिसे मनपा नहीं शुरू कर पा रही थी। उसे हमने शुरू किया यह हमारे किए एक नई उपलब्धि थी। मगर बाद में हरीश परब और सुहास लोहार के बीच कुछ अनबन हो गई और उस सेंटर को सुहास लोहार संभालने लगा। वह पवनपुत्र का पूर्व मलखांब खिलाड़ी था। अंधेरी सेंटर में चेंबूर से जिमनास्टिक के जो उपकरण लगाए गए थे, वे वैसे ही वहां मौजूद थे, मगर उस सेंटर से श्रीपवनपुत्र और जिला संगठन का नाम सिरे से हटा दिया गया। इस पीड़ा को भी हमने झेली।

उत्तर कोकण एवं राज्य के अन्य प्रदेशों से प्रति वर्ष लगभग 350 से अधिक खिलाड़ी अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, जो हमारे प्रयासों से ही संभव हो पाया था। इस सेंटर का काम मुख्य रूप से सुहास लोहार देख रहा था। उसने और प्रकाश रेवाळे तथा हरीश परब

(मालाड) ने काफी मेहनत करते हुए अंतरराष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों को तैयार किया। ये सभी पवनपुत्र के विद्यार्थी थे। 2010 के बाद इस सेंटर के कई लड़कियों को शिवछत्रपति पुरस्कार भी मिला, जो हमारे लिए फख्र का विषय था। आगे इसी सेंटर की नीलम भोसले बाबर देसाई के मार्गदर्शन में प्रबोधनकार ठाकरे सेंटर में भी स्पोर्ट्स गतिविधियां आरंभ हुईं। वसुंधरा भोसले ने नए लोगों को प्रशिक्षण देने के लिए पहले शिक्षकों को तैयार करने का काम किया। उनमें से कुछ शिक्षकों ने नेट–सेट की परीक्षा उत्तीर्ण की और स्कूल-कॉलेजों में कोच के रूप में काम करने लगे। आगे हमें ये जानकारी भी मिली कि इस सेंटर से जुड़े कई बच्चों ने टॉडलर्स करते हुए राष्ट्रीय प्रतियोगितायों में सहभागिता की। इन बच्चों ने ऑस्ट्रेलियाई पद्धति से कम्प्यूटरीकृत पंजीकरण कराया था। लोकमान्य सेवा संघ में भी प्रफुल्ल ठाकुर के नेतृत्व में जिमनास्टिक का प्रशिक्षण शुरू किया गया था। इस तरह के उपक्रम अलग-अलग जगहों पर चलता रहा है, जो मुझ जैसे स्पोर्ट्स कार्यकर्ता के लिए सुखद अनुभूति थी। इस तरह की गतिविधियां खेल प्रतिनिधियों और खेल प्रशिक्षकों द्वारा निरंतर रूप से जारी रखनी चाहिए। निरंतरता के लिए पुरानी पीढ़ी के बाद नई पीढ़ी का आगमन होना चाहिए।

उपरोक्त बातों का जिक्र करने का मकसद सिर्फ इतना है कि मुंबई अंधेरी का लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स संभ्रांत लोगों का इलाका था और आज भी है। शहाजी राजे भोसले क्रीड़ा संकुल अर्थात अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स उसी क्षेत्र (मुंबई नगर निगम) में है। विदेशों से लौटे कुछ माता-पिता एक बेहतर सुसज्जित खेल सेंटर की मांग कई वर्षों से कर रहे थे। उनका सपना साकार हुआ। इस सेंटर को देखकर कई देशी-विदेशी क्रिकेटरों ने इसकी तारीफ की, मगर उन लोगों ने भी इसे और अत्याधुनिक बनाने का सुझाव दिया, जो सरकारी नीतियों और लापरवाही के कारण आज तक संभव नहीं हो पाया। यह हमारे लिए पीड़ा का विषय है। खिलाड़ियों को यदि ठीक से सुविधाएं नहीं मिलेंगी तो अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में वे बेहतर प्रदर्शन कैसे करेंगे? ऐसी स्थिति में विकसित देशों के खिलाड़ियों के मुकाबले हमारे

खिलाड़ियों की तुलना कहां तक उचित है? 'फोम पिट' अर्थात सुरक्षा बेल्ट की कमी कई वर्षों से है, जिसकी मांग जिला संगठन की ओर से 1992 से की जा रही है। सांसद फंड प्राप्त करने के लिए संगठन लगातार प्रयास करता रहा, मगर अभी तक कोई सफलता नहीं मिली। इससे वहां खेल गतिविधियों को आवश्यक गति नहीं मिल पा रही थी, इस बात का दुख आज भी हो रहा है।

सन् 2000 से अब 2025 आ गया, मतलब 25 सालों बाद भी हम जहां थे, आज भी वहीं हैँ। 'जिमनास्टिक सभी खेलों की जननी है' (Mother of all sports) का कैप्शन जिमनास्टिक के बैनर पर दिखाई देता है, किन्तु अन्य किसी गेम के बैनर पर ऐसा कैप्शन क्यों नहीं दिखाई देता? यह मेरे लिए पीड़ा का विषय है। किसी भी नए काम को शुरू करने में कई तरह की बाधाएं आती हैं। अंधेरी सेंटर के साथ भी यही हुआ। कोच की कमी की समस्या कई बार आई। बच्चे और उनके माता-पिता नए शिक्षकों के साथ तालमेल नहीं बैठा पा रहे थे। इसलिए जिमनास्टिक की बजाय उन्होंने टेबल टेनिस, बैडमिंटन जैसे वहां चल रही अन्य खेल सुविधाओं का लाभ उठाया। ये एक तरह से ठीक ही था। शिक्षा के क्षेत्र में जिस तरह से अखिल भारतीय स्तर पर नेट-सेट परीक्षा की व्यवस्था है, उसी तरह की व्यवस्था खेल प्रशिक्षकों के लिए भी की जानी चाहिए, ये सुझाव मैंने कई बार दिया मगर कोई सार्थक निष्कर्ष अभी तक नहीं निकला। नेट-सेट परीक्षा से आए कोच प्रशिक्षित होंगे और इससे कई लोगों को कोच या ट्रेनर की नौकरी भी मिलेगी। इस तरह से खेल के माध्यम से रोजगार के नए अवसर प्राप्त होंगे। यह बहुत बड़ी बात हो सकती है।

21

कालाय तस्मै नमः

सन् 2005 के बाद अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स को लेकर मेरी व्यस्तता बढ़ गई थी। इससे श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की ओर मैं ठीक से ध्यान नहीं दे पा रहा था। संक्षेप में कहें तो चेंबूर के पवनपुत्र सेंटर की उपेक्षा हो रही थी। इसलिए 2009 में चेंबूर में निमंत्रित राज्य स्तरीय खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन हमने किया, ताकि नए उत्साह के साथ विद्यार्थी, खिलाड़ी पुनः नए सिरे से गतिमान हो जाएं। अतः मैंने एक बार फिर समर्पित होकर पवनपुत्र पर पूरा ध्यान केंद्रित किया। तब भाऊ जांभवलीकर श्रीपवनपुत्र के अध्यक्ष थे। काफी परिश्रम से ये प्रतियोगिताएं सफलता पूर्वक सम्पन्न हुईं। खिलाड़ियों का काफी उत्साहवर्धन हुआ। पवनपुत्र संस्था में अब डॉ. सुनील हळूरकर भी जुड़ गए थे, इससे मेरा भार कुछ हल्का हो गया था। जिम्नास्टिक्स और अन्य प्रतियोगिताओं को लेकर 2008 में मैंने उनके साथ 8 बार झांसी (पंडोखर सरकार) का दौरा किया था। वे हमारे घर श्री मल्हार निवास में भी आए थे। स्वामी महाराज के आशीर्वाद से प्रतियोगिता के लिए 2.25 लाख रुपयों की राशि बतौर डोनेशन शेट्टी जी से प्राप्त हुई थी। पेवर्स ब्लॉक के काम के लिए क्षेत्रीय विधायक चंद्रकांत हंडोरे के विधायक फंड से 15 लाख रुपयों का अनुदान प्राप्त हुआ। इस तरह के आर्थिक सहयोग से पुनः एक बार हम सबका मनोबल बढ़ गया था।

ऊपर मैंने जिक्र किया है कि अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्पलेक्स के सेट-अप को संभालते हुए मेरी व्यस्तता बढ़ने के साथ-साथ काफी निराशा भी हुई

थी। यहां तक की जिला संगठन के काम में भी मैं ठीक से समय नहीं दे पा रहा था। मैंने देखा कि मेरी अनुपस्थिति में वहां का कामकाज भी रामभरोसे चलने लगा था। कुछ दिनों बाद 'मेयर कप' प्रतियोगिता की घोषणा हुई और उसकी जिम्मेदारी भी हमें सौंपी गई। संक्षेप में कहें तो कई खेल संगठनों की जिम्मेदारियों को संभालते हुए मैं पवनपुत्र की ओर ठीक से ध्यान नहीं दे पा रहा था। आगे MAGA की कुछ नीतियों के खिलाफ हमारे अपने विदयाथियों ने विरोध करना शुरू कर दिया था। उन्हें औरंगाबाद और ठाणे जिला संगठन का समर्थन प्राप्त था। संभवतः कानसिंग राठौड़ (राजस्थान) भी उनका समर्थन कर रहे थे। एक रात अचानक सुधीर जोशी चेंबूर आए और उन्होंने MAGA के अध्यक्ष पद से अपना इस्तीफा दे दिया। श्री पंत सर भी अब शारीरिक रूप से थक गये थे। उनका स्वास्थ ठीक नहीं रहता था। वाबजूद इसके वे जवाहर भवन की गतिविधियों को जारी रखना चाह रहे थे। इस बीच हमारे स्टार खिलाड़ी जयंत गायकवाड का छोटी–सी बीमारी के कारण निधन हो गया, जो हमारे लिए बेहद दुखद घटना थी। आपसी गुटबाजी के चलते सुनील गंगावणे और आशीष सावंत (कोच) भी श्रीपवनपुत्र का काम छोड़कर चले गए। मतलब एक साथ इतनी विपरीत परिस्थितियों उत्पन्न हो गईं कि तुरंत उनसे निबटना मेरे लिए मुश्किल हो गया था। स्थिति यहां तक पहुच गई थी कि पवनपुत्र व्यायाम मंदिर बिना कोच के कई महीनों तक कार्यरत रही। अंततः इसका भार पुनः मैंने अपने कंधों पर उठा लिया और काम जारी रखा। श्री 'पै' सर मेरे साथ थे, जो बिना कोई वेतन लिए काम कर रहे थे। इससे खेल के प्रति उनके जुनून का अंदाजा लगाया जा सकता है। संकट की उस घड़ी में वे मेरे साथ थे। इसका आज सार्थक अभिमान हो रहा है। वे खिलाड़ियों को वेटलिफ्टिंग (भारोत्तोलन) का प्रशिक्षण देते थे।

एक घटना याद आ रही है - लगभग 20 वर्ष पहले गुर्जर, ढोले, अतुल कर्णिक और मैं महाराष्ट्र मंडल – पुणे में बच्चों के प्रशिक्षण के बारे में चर्चा कर रहे थे। तब गुर्जर सर ने कहा था कि सार्वजनिक गार्डेन्स (बगीचे) में नगर पालिका द्वारा लगाए गए खेल इक्विपमेंट्स कुछ और नहीं बल्कि

जिमनास्टिक के ही इक्विपमेंट्स होते हैं। हमारे यहां इनका सदुपयोग नहीं हो पाता है। मैं उनकी बात से तब पूरी तरह सहमत नहीं था। कुछ समय बाद जब कुर्ला, नेहरू नगर में 3-4 गार्डन देखा तो मुझे गुर्जर की बात पर तसल्ली हुई। इसी तरह संत श्री गजानन महाराज के शेगांव के आनंदवन में भी मैंने इस तरह के गार्डन इक्विपमेंट्स कुछ साल पहले देखे थे। आजकल तो कई बगीचों में हरे लॉन भी चिपकाए जाते हैं। लेकिन हममें से कितने लोग जानते हैं कि ये जिमनास्टिक उपकरण हैं? यहां तक कि मेरे जैसे कोच को भी इस बात की जानकारी बहुत बाद में हुई। बावजूद इसके मेरा सुझाव यह भी है कि छोटी ऊंचाई के मलखांब भी गार्डन इक्विपमेंट्स के रूप में लगाए जाने चाहिए।

किसी काम में जब खंड पड़ जाता है तो उसे पुनः शुरू करने में बड़ी तकलीफ होती है। इस अनुभव से मैं गुजर चुका हूँ, मगर इरादे पक्के हों और हौसले बुलंद हो तो उस अधूरे काम को पुनः शुरू किया जा सकता है। ऐसे कई उदाहरण हमारे आस-पास देखने को मिल जाएंगे। मेरे जीवन में भी ऐसे कई पड़ाव आए और पूरे आत्मविश्वास के साथ मैं पुनः उस काम में जुट गया। 'पुनश्च हरिओम' कहने की हमारे यहां परंपरा है। वैसे भी सारे काम अपने मन मुताबिक कहां हो पाते हैं! फिर भी समझौता करते हुए आगे बढ़ना ही जिंदादिली की निशानी होती है। परिस्थितियों पर मात करते हुए हमें आगे बढ़ते रहना चाहिए। सरकारी व्यवस्था से हमारी जो अपेक्षाएं थीं, वो अब भी पूरी नहीं हो पाईं इसका दुख तो होता ही है मगर हम अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं हुए। खेल के मामले में भारत में आज भी न्यूनतम सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। एखाध जगह हैं भी तो ठीक से कार्यान्वित नहीं हैं।

तकनीकी के इस आधुनिक दौर में गूगल और यू-ट्यूब के सहारे किसी भी विद्या की जानकारी मिल तो सकती है, लेकिन उसके सहारे परफेक्ट प्रशिक्षण नहीं प्राप्त किया जा सकता। कुछ ऐसे कोच मैंने देखा है, जिनकी बतौर खिलाड़ी कोई उपलब्धि नहीं है, मगर गूगल और यू-ट्यूब से जानकारी प्राप्त करके वे कोच बन गए हैं। इस तरह के अधकचरों ने हर क्षेत्र

में बड़ा नुकसान किया है। इसे बच्चों के भविष्य के साथ किया जाने वाला खिलवाड़ ही कहा जा सकता है। यह चिंतन का विषय है। भाषा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने से पहले स्कूलों में बच्चों को पहले अक्षर ज्ञान सिखाया जाता है, उसके बाद शब्द ज्ञान, फिर वाक्य बनाना, पैराग्राफ लिखना और अंत में कहानी या निबंध लिखना सिखाया जाता है। शिक्षा का यह क्रम है। इसी तरह का क्रम खेलों में भी होता है। उसके भी स्टेप्स होते हैं। मगर इन स्टेप्स (चरणों) को दरकिनार करते हुए कुछ लोग सीधे एक्सपर्ट खिलाड़ी बनाने का दावा करते हैं और प्रशिक्षण भी देते हैं, ये कहां तक उचित है? ऐसे खिलाड़ियों का क्या भविष्य होगा? यह एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह आज मेरे सामने खड़ा है। करावके के माध्यम से गाना गाकर कोई महान गायक बन सकता है क्या? मतलब हर विद्या का अपना शास्त्र होता है, उसके पीछे तपस्या होती है। सफलता पाने के लिए खूब अभ्यास (रियाज) और सातत्य की जरूरत होती है। जो लोग निरंतर अभ्यास करते हैं वही सफलता के पायदान तक पहुंचते हैं। किसी भी विधा में महारत हासिल करने के लिए तपस्या की स्थिति से गुजरना पड़ता है। शॉर्टकट से क्षणिक सफलता तो मिल जाती है, मगर उस कला में माहिर नहीं हुआ जा सकता।

इन बातों का जिक्र यहां सिर्फ यह बताने के लिए कर रहा हूँ कि ये वो दौर था, जब महाराष्ट्र में जिमनास्टिक की जड़ें पूरी तरह से जमीं नहीं थी। कुछ जिलों में काम हो रहा था, मगर उन्हें भी कोच के अभाव का सामना करना पड़ रहा था। श्रीपवनपुत्र व्यायामशाला पुरानी संस्था थी, वहां के सीनियर विद्यार्थी मेरी अनुपस्थिति में काम चला लेते थे। वैसे भी पवनपुत्र में आसन, मलखांब और जिमनास्टिक का बेस मजबूत था। बावजूद इसके एक समय ऐसा आ गया जब पवनपुत्र को भी बिना कोच के काम चलाना पड़ा। उम्र के साथ धीरे-धीरे राज्य, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में सहभागिता की मेरी उत्सुकता एवं नवीनता की चाह खत्म हो रही थी। इसके चलते जिम्मेदारियों का भार अपने कंधों से कम करते हुए मैं अपने पूर्व विद्यार्थियों को सौंपता गया। कुछ वर्षों बाद पता चला कि ये विद्यार्थी अपनी नौकरी या रोजी रोजगार छोड़कर अब अपनी निजी संस्थाएं खोलकर वहां

के मालिक बन बैठे हैं। इसमें कुछ बुराई नहीं है मगर अधिकांश लोगों में मैंने डिवोशन, त्याग, और परिपूर्ण ज्ञान का अभाव देखा है। अर्थात हर तरह की शिक्षा का व्यावसायीकरण हो रहा है। क्या इसे संतोष जनक स्थिति कहा जा सकता है? 'कालाय तस्मै नमः।'

D-80 गांवठान और मल्हार निवास के पुनर्विकास का मुद्दा

बदलते समय के साथ मुंबई महानगर और उसके उपनगरों में विकास का काम तेजी से आगे बढ़ रहा था। मगर विकास की इस तेज धारा में चेंबूर गांवठन की स्थिति अब भी वैसे ही है, जैसे 200 साल पहले थी। चकाचौंध करने वाली इस मायानगरी मुंबई में आज भी कई गांवठान और कोलीवाड़ा तथा पुरानी जर्जर चालें मौजूद हैं, जो विकास की मुख्य धारा से आज भी कोसों दूर हैं। गांवठान अर्थात गाँव, जहां के घर पुरानी ग्रामीण संस्कृति का दर्शन कराते हैं। 100-150 साल पुराने घर, गांवठान, पुरानी चालें आखिर कितने वर्षों तक टिकेंगे? उनकी भी समय सीमा होती है। वहां की सिवरेज व्यवस्था, गटर लाईन, पानी की व्यवस्था, शौचालय आदि दिन प्रति दिन जर्जर होते जा रहे थे। नई इमारतों के सामने ये बस्तियां पुरानी दाद, खाज की तरह इस आधुनिक शहर के जिस्म पर आज भी मौजूद हैं। इसी परिसर में श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर भी है, वो भी धीरे-धीरे जर्जर होती गई। संक्षेप में कहें तो इक्कीसवीं सदी में भी इन बस्तियों में रहने वाले लोग आज भी पिछड़ेपन की जिंदगी जीने को मजबूर हैं। गांवठनों के विकास में कई तरह की सामाजिक एवं भौगोलिक मुश्किलें आड़े आ रही थीं, जो आज भी बरकरार हैँ। मुंबई जैसे महानगर की आज ये बड़ी समस्या है। मेरा मानना है कि सरकार को सार्थक योजना के तहत इनके पुनर्विकास को लेकर ठोस कदम उठाए जाने चाहिए। जरूरत पड़े तो कठोर निर्देश भी जारी किए जाने चाहिए। सार्थक कोशिश करें तो समाधान जरूर निकल

सकता है। उसी चेंबूर गांवठान में मेरा बचपन गुजरा, वहीं पर जवान हुआ इसलिए उस भूमि से मेरा लगाव अधिक था, बल्कि आज भी है। श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर और गांवठान मेरा पहला प्यार, मेरी मातृभूमि और कर्मभूमि रही है। मेरे पिताजी और तत्कालीन सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपने दौर में इसके पुनर्विकास को लेकर हर संभव प्रयास किया, मगर सफल नहीं हुए।

1982 के एशियाड खेलों के कुछ दिन पहले, D-80 गांवठान जहां श्रीपवनपुत्र व्यायामशाला है, वहां की खाली जगह पर कुछ झुग्गी-झोपड़ी वालों ने अवैध रूप से कब्जा जमा लिया था, जिनके खिलाफ कोर्ट में कई वर्षों तक केस चला। दरअसल मेरे पिताजी ने सामाजिक सोच के तहत कुछ गरीब, असहाय और मजदूरों को व्यायामशाला के परिसर में रहने की अनुमति दी थी। आगे चलकर झुग्गियां बनाकर ये लोग जगह पर कब्जा कर लेंगे, ऐसा उन्होंने तब सोचा नहीं था। जब तक वे जीवित थे तब तक उनका दबदबा था, मगर उनके ना रहने के बाद मामला उल्टा हो गयाऔर हमें अदालत का दरवाजा खटखटाना पड़ा। अंत में इन झुग्गियों को लेकर अदालत ने बड़ा फैसला सुनाया, जिसके तहत झुग्गियों को वहां से हटाया गया। यह एक बड़ी घटना थी। कानूनी कार्रवाई में मेरी पत्नी विजया का काफी सहयोग मिला। बेलीफ प्राप्त करने से लेकर पुलिस की मदद, पेपर तैयार करने जैसे कामों में वह सहयोगी बनकर हमेशा मेरे साथ खड़ी रही। हमारे मित्र आनंद सांडू जो पेशे से 'सी.ए.' हैं, उन्होंने D-80 के जगह का बंटवारा, विभाजन आदि को लेकर विस्तृत मार्गदर्शन किया और समर्थन भी दिया।

इस बीच हमारी विद्यार्थी मीनल देशपांडे को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रथम भारतीय महिला रेफरी (जज) बनने का सम्मान मिला। यह हमारे लिए गौरव की बात थी। उसके पति अरविंद म्हात्रे ने D-80 गांवठान का नया प्लान बनाकर मुझे दिया, जिसके अनुसार उस जगह को 0.5 एफएसआई में कैसे विभाजित किया जा सकता है, इसकी पूरी जानकारी भी दी।

श्रीमल्हार निवास के पुनर्वविकास को लेकर मैंने भाई, अप्पा, दादा (परिवार के सदस्य) से कई बार चर्चा की, लेकिन कोई खास फायदा नहीं हुआ। सभी अपने-अपने स्वार्थ के खातिर अड़ंगे डाल रहे थे। सिर्फ हमारे परिवार में ही नहीं बल्कि गांवठान के अधिकांश घर- परिवारों की यही स्थिति थी। 1980 में भाई का निधन हो गया और 1984 में पिताजी पक्षाघात के शिकार हो गए। लगभग आठ वर्षों तक उनके इलाज के लिए जसलोक और के.ई.एम. अस्पताल का हम लोग चक्कर काटते रहे। इलाज में काफी रुपए खर्च हुए मगर सफलता नहीं मिली। उनकी सुश्रुषा में विजया, छोटी मौसी रेवती महंत ने कोई कमी नहीं छोड़ी। भाऊ जांबवलीकर का भी सहयोग बीच-बीच में मिलता रहा। पिताजी के स्वर्गवास के बाद परिवार में आपसी तनाव बढ़ गया था। अन्य घरों में होता है उसी तरह अनिशा और विजया के बीच घरेलू तनाव (झगड़ा) बढ़ता गया। मां की इच्छा के खिलाफ आखिर रसोई दो भागों में विभाजित हो गई। साथ ही पुस्तैनी मकान 'श्रीमल्हार निवास' का भी विभाजन करना पड़ा। पारिवारीक मतभेदों को मिटाना जरूरी था जो कि बंटवारे के बगैर संभव नहीं था। किसी भी परिवार में बिखराव की स्थिति सुखद नहीं होती, इसे हम सभी बेहतर जानते हैं।

चेंबूर गांवठान का हमारा पुस्तैनी मकान 'श्रीमल्हार निवास' लगभग तेरह गुंठा की जगह में बना है। मौजूदा स्थिति में उसमें बाईस कमरे हैं। परिवार के सभी सदस्य आज भी वहीं रहते हैं, मगर अब मैं वहां नहीं रहता। चेंबूर गांवठान छोड़े मुझे आठ साल हो गए। व्यायामशाला के सारे कागजात, जरूरी सांगरा और कई तस्वीरें आज भी वहीं उसी 'श्रीमल्हार निवास' में हैं। 'श्रीमल्हार निवास' आज खंडहर होने के कगार पर है। एक ओर मुंबई का तेजी से विकास, दूसरी ओर D-80 गांवठान की जर्जर स्थिति। मुंबई, चेंबूर में विकसित हो रही नई संस्कृति, बड़ी-बड़ी इमारतें, लम्बी-चौड़ी सड़कें, फ्लायओवर, टॉवर आदि बन रहे थे, वहीं दूसरी ओर मुंबई के परंपरागत पुराने बासिंदे गांवठान, कोलीवाड़ा, घाटला, चालें आदि में कई तरह की परेशानियों को झेलते हुए आज भी जर्जर घरों में रहने को मजबूर हैं। ये सिर्फ चेंबूर की ही नहीं, बल्कि मुंबई के तमाम गांवठान,

कोलीवाड़ा और पुरानी चालों तथा बिल्डिंगों की यही स्थिति है। वहां की संकरी गलियां, जर्जर इमारतें, खस्ताहाल शौचालय, ड्रेनेज, पानी आदि की समस्याएं आज भी मौजूद हैं। 100-150 साल पुराने घरों में रहना आज भी लोगों की मजबूरी है। ये वही लोग हैं जो मुंबई के मूल बासिंदे कहलाते हैं। नियम के मुताबिक 0.5 का एफ.एसआई (FSI) 1.5 से 2 तक ले जाने के लिए कम से कम 18 फीट चौड़ा रास्ता होना चाहिए, मगर मौजूदा स्थिति में इसका कोई समाधान नहीं है। स्थानीय लोग अपने स्वार्थों से जकड़े हुए हैं। कुछ तो ऐसे लोग हैं जिनकी आर्थिक स्थिति डावांड़ोल है, ऐसे लोग पुनर्विकास चाहते ही नहीं। हमारे चेंबूर गांवठान की रचना पुणे के पुराने घरों के अनुसार हैं। आज पुणे के पुराने बस्तियों की भी ऐसी ही स्थिति है। मुंबई, पुणे ही नहीं बल्कि देश के उन सभी पुराने शहरों की यही स्थिति है। यह एक राष्ट्रीय समस्या है।

बहरहाल चेंबूर गांवठान के पुनर्विकास का मामला कुछ वर्षों तक कोर्ट में भी चला, पर कोई समाधान नहीं निकला। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं में इस बारे में लेख–समाचार आदि भी प्रकाशित हुए। फिर भी समस्या का निदान नहीं हुआ। आधे से अधिक मुंबई की लगभग यही स्थिति है। बढ़ते परिवार एवं नई पीढ़ी के बच्चों के सामने 'पुनर्विकास' का मुद्दा एक यक्ष प्रश्न बनकर खड़ा है। धीरे-धीरे मुंबई की कुछ बस्तियों का पुनर्विकास जरूर हो रहा है, मगर इसकी रफ्तार बहुत धीमी है। इन मामलों में सरकार की ओर से जब तक सख्त कदम नहीं उठाए जाएंगे, तब तक समाधान नहीं निकल पाएगा। दूसरे शब्दों में कहें तो सरकार इस तरह की समस्याओं को बनाए रखना चाहती है। इसके पीछे गहरी राजनीति है। दक्षिण मध्य मुंबई जहां कभी 20 से अधिक कपड़ा मीलें थीं, जिनकी अपनी विस्तृत जगह जमीन थी। कामगारों की हड़ताल के बाद जब ये मीलें बंद हो गईं, तब सरकार ने इसमें हस्तक्षेप करते हुए रास्ता निकाला। आज इन जगहों पर आलीशान इमारतें और व्यापारिक हब बन गए हैं। इस विकास के पीछे भी गहरी राजनीति है जो सामान्य इंसान के समझ से परे है। मील कामगारों को आवास देने की घोषणा की गई थी। कुछ लोगों को आवास मिले भी, मगर

आज भी अपने हक के घर के लिए कुछ लोग दर–दर की ठोंकरें खा रहे हैं। यह एक प्रकार की शोकांतिका है। मूल कामगार तो कब के यह लोक छोड़कर चले गए मगर उनकी अगली पीढ़ियां आज भी न्याय के लिए भटक रहे हैं।

इसी तरह दक्षिण मुंबई, दक्षिण मध्य मुंबई के कुलाबा, गिरगांव, मुंबादेवी, परेल, वरली, दादर, भायखला, लालबाग, चिंचपोकली, कड़ी रोड़, प्रभादेवी, माहिम, धारावी, सायन जैसे इलाकों में सैकड़ों ऐसी 100-150 साल पुरानी चालों और इमारतों के पुनर्विकास का मुद्दा आज भी अधर में लटका हुआ है। इन इलाकों में बहुत बड़ी संख्या में मिल कामगार या उनके परिवार रहते हैं जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं। पुराने दौर में इन इलाकों में कबड्डी, खो-खो, बॉडी बिल्डिंग, व्यायामशाला, लेझिम, लोककलाओं का उत्सव, कुश्ती आदि की बड़ी धूम हुआ करती थीं। शादी, विवाह या उत्सवों के अवसर पर लेझिम पथक, बैंड पथक, शारीरिक करतब, लोकनाट्य, शाहीरी-पोवाड़ा गायन, नाटक, जुलूस आदि के कार्यक्रमों का आयोजन बड़े जोर शोर के साथ किया जाता था। आपसी भाई चारा का माहौल भी भरपूर था। सावन में महिलाएं परंपरागत सामूहिक खेल, गीत, नृत्य आदि किया करती थीं। आज के इस नए दौर में पढ़-लिखकर हम भले ही आधुनिक हो गए हैं मगर पुरानी संस्कृतियों, रीति-रिवाजों को भूल गए हैं। माना कि तब लोग अधिक शिक्षित नहीं थे मगर आपसी सौहार्द, मेल-मिलाप, सामाजिकता, परंपरा आदि को अधिक महत्व देते थे। आज बड़ी-बड़ी इमारतों के फ्लैट में लोग कैद लोग अपनी संकृति, परंपरा, संबंधों को भूल रहे हैं। पास-पड़ोस में कौन रहता है, इसकी भी लोग आज खोज खबर नहीं लेते। देशी खेलों को छोड़कर लोग विदेशी खेलों में अधिक रुचि लेने लगे हैं। आज स्कूल कॉलेजों में भी शारीरिक शिक्षण (पी.टी.) का पीरियेड सिर्फ नाम के लिए रखा जाता है। पुरानी व्यायमशाला, आखाड़ा संस्कृति आज कमर्शियल ए.सी. जिम में परिवर्तित हो गई हैं। मुंबई के मूल निवासी एवं आम जनता मुख्य शहर से कोसों दूर बाहर गांव जाकर बसने को मजबूर हो गई है। मुंबई की बढ़ती लोकसंख्या के कारण आज लोकल ट्रेनों

में नारकीय यात्रा करने को मजबूर हैं। मशहूर शायर निदा फाजली के लफ्जों में कहें तो-

'हर तरफ, हर जगह, बेशुमार आदमी,
फिर भी तन्हाईयों का शिकार आदमी।
सुबह से शाम तक बोझ ढ़ोंता हुआ
अपनी ही लाश का खुद मज़ार आदमी।'

आज की नई दुनिया अब कारपोरेट जगत का रूप ले रही है। मुझे लगता है कि कारपोरेट जगत, मुंबई की फिल्मी दुनिया, होटल, पब, बार आदि की बात ही नहीं की जाए तो बेहतर है, क्योंकि हम अपने मूल विषय से भटक जाएंगे। एक वो दौर था जब लोग 6 से 8 घंटे की नौकरी करते थे, आज 10 से 12 घंटे की ड्यूटी करने को लोग मजबूर हैं। ऐसे में व्यायामशाला, जिम्नास्टिक, मलखांब, परंपरागत उत्सव, खेल आदि के लिए लोगों के पास समय ही नहीं है। खेल जो कभी फिटनेस के साधन हुआ करते थे, आज मनोरंजन एवं कमर्शियल इवेंट बन गए हैं। इस विषय पर जितना भी भाष्य किया जाए वह कम है। इस बारे में सबकी अपनी अलग-अलग सोच हो सकती है। ये मेरे व्यक्तिगत विचार हैं।

इस बीच हमारा एक विद्यार्थी चंद्रशेखर पाटील न्यूजीलैंड जाने के लिए काफी उत्साहित था। वह अपनी तैयारियों में लगा था। जितना संभव हो पाया मैंने उसकी मदद की। कहते हैं ना कि अगर आप किसी की मदद करने के लायक हैं तो जरूर करना चाहिए। क्योंकि दुनिया में हमारी पहचान धन से नहीं कर्म से बनती है। धन-दौलत पीछे छूट जाता है, मगर कर्म के साथ नाम शेष रह जाता है। अपनी इस सोच का मैंने सदा पालन किया, इसीलिए विपरीत परिस्थितियों में मददगार मिलते गए और मैं इस मुकाम तक पहुँच पाया। इस आपाधापी भरे जीवन में मन मुताबिक जीना सबके नसीब में नहीं होता, इस बात का एहसास कभी-कभी मुझे भी होता है, पर उम्र रेत की तरह कब मुट्ठी से फिसल गई, पता ही नहीं चला। श्रीपवनपुत्र एवं खेल की दुनिया को लेकर मैंने कई सपने देखे थे। सभी तो

पूरे नहीं हुए मगर जो कुछ कर पाया उससे संतुष्ट हूँ– 'जो खोया उसका ग़म नहीं, जो पाया किसी से कम नहीं।'

23

घर हो अपना, साकार हुआ सपना

चेंबूर का 'श्रीमल्हार निवास' बहुत पुराना हो गया था। परिवार में सदस्यों के संख्या भी बढ़ गई थी, जिससे पारिवारीक विवाद भी बढ़ गए थे। अतः क्षमतानुसार अपना एक छोटा-सा फ्लॅट होना चाहिए, यह सपना विजया और मेरे मन में कई वर्षों से उछाल मार रहा था। मगर मुंबई में सामान्य नौकरी पेशा इंसान के लिए अपना फ्लैट खरीदना तब भी इतना आसान नहीं था और आज भी इतना सहज नहीं है। चेंबूर ने भी अब आधुनिकता का लिबास ओढ़ लिया था, जहां फ्लॅट्स के दाम आसमान छू रहे थे। चेंबूर में फ्लॅट खरीदना अब आम आदमी के बस की बात नहीं थी। हमने वो दौर देखा था जब चेंबूर में रहने आने के लिए लोग बड़ी मुश्किल से तैयार होते थे।तेल कंपनियों, रिफाइनरी और राष्ट्रीय केमिकल फर्टिलाइजर के कारण हरा-भरा चेंबूर प्रदूषण युक्त हो गया था। मगर धीरे–धीरे चेंबूर की आबो- हवा बदलने लगी। आज आरसीएफ कॉलनी, रिजर्व बैंक कॉलनी, गोल्फ क्लब मैदान, सांडू गार्डेन,अंबेडकर उद्यान, डायमंड गार्डेन, आर.के. स्टूडियो, म्हाड़ा कॉलनियां, थिएटर, मंदिर, फाइन आर्ट्स, स्कूल-कॉलेज, सरकारी तथा निजी बैंक, अस्पताल, होटेल्स, रेल और सड़क की कनेक्टिविटी आदि के कारण चेंबूर पूरी तरह से आधुनिक कॉस्मोपोलिटीन उपनगर बन गया है। अब यहां कई सेलिब्रेटी, उद्योगपति, संभ्रांत लोग आदि रहने लगे हैं। विकास की इस धारा में हमारा गांवठान अब भी वैसा ही है, जैसा वर्षों पहले था। इसके विकास में कई मुश्किलें आ रही थीं, जो आज भी

बरकरार हैं।

मुझे मेरे बचपन की एक बात याद आ रही है। तब मैं 7 वीं कक्षा में था और मेरी माँ अस्वस्थ थी। वातावरण परिवर्तन के लिए माँ के साथ मैं भी लोनावाला गया था। वहां उसकी सुश्रुषा मैंने बड़े मन से की। कुछ दिनों बाद जब वह कुछ स्वस्थ हो गई तब हम घर लौट आए। इसके कई सालों बाद जब मैं कॉलेज में पढ़ रहा था तो मेरी मां को छह महीने तक पुणे के मोरारजी गोकुलदास सॅनेटोरियम में स्वास्थ लाभ के लिए रखा गया था। चूंकि धनंजय चिवटे सिविल इंजीनियर बनने के बाद पुणे में ही काम कर रहा था, इसलिए उसकी मदद से हम माँ की देखभाल वहां ठीक से कर पाए। मगर बार-बार मुंबई-पुणे की यात्रा करना तब आज की तरह आसान नहीं था, इसलिए हमने पुणे में एक फ्लॅट लेने का निर्णय लिया। इस काम के लिए विजया और मैं कई बार मुंबई-पुणे का चक्कर लगाते रहे। पुणे में अक्सर हम लॉज में ठहरते थे। वहां मेरे मित्र गुर्जर और संजोग ढोले से महाराष्ट्र मंडल तथा जिमनास्टिक को लेकर चर्चाएं होती थी। स्व. दामले साहब से भी मुलाक़ात होती थी। इस बीच एक दिन सूचना मिली कि स्कूली शिक्षकों के लिए कुर्ला के भावे नगर में 225 वर्ग फीट का फ्लॅट म्हाड़ा द्वारा अलॉट होने वाला है। अतः इसके लिए आवश्यक कागजी प्रक्रिया पूरी करते हुए मैंने आवेदन कर दिया। कुछ महीनों बाद अन्य शिक्षकों के साथ मुझे भी 2005 में कुर्ला में एक छोटा–सा फ्लॅट टीचर कोटा में मिल गया और एक अधूरा सपना पूरा हो गया। 1995 के आस-पास हमने अपनी 'मारूती कार' खरीदी। पुणे में घर खरीदने को लेकर जो उठापटक चल रही थी आखिर उसमें भी सफलता मिली। हम दोनों पति–पत्नी नौकरी में थे इसलिए पुणे में फ्लॅट लेना संभव हो पाया। बाद में पत्नी विजया के दूर के रिश्तेदार के प्रयास से कुर्ला में एफएसआई एक्सटेंशन से टेरेस फ्लॅट का सपना भी पूरा हो गया और चेंबूर छोड़कर हम कुर्ला शिफ्ट हो गए। अपने बलबूते पर खुद का आशियाना बनाना कितना सुखद होता है इसका हम एहसास कर रहे थे। चेंबूर छोड़ने के बाद आपसी रिश्तों एवं संबंधों का क्या होगा? क्या कोई एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल हो पाएगा? पवनपुत्र के मेनजमेंट का क्या होगा? ये

सारे विचार मेरे मन में कौंध रहे थे। मगर समय के साथ सब ठीक हो गया।

कुछ समय तक हम पुणे में भी रहे। अफसोस कि इसे देखने के लिए माताजी-पिताजी इस दुनिया में नहीं थे। स्पोर्ट्स गतिविधियों के कारण अकसर लोगों का पुणे आना-जाना लगा रहता था। घर के अन्य सदस्य भी पुणे आते-जाते रहते थे। अनिल मेरा छोटा भाई एक बार पत्नी अनिशा के साथ अपनी नई कार से पुणे आया था। विजया की कुछ सहेलियां भी पुणे के घर में आती-जाती रहीं। इस तरह पुणे का जीवन, हमें रास आने लगा था। पुणे का घर राघव नगर, धनकवड़ी में भारतीय विद्यापीठ के पास था। औरंगाबाद से सुधीर जोशी जब भी पुणे आते तो, हमारे घर पयर ही ठहरते थे। पंत सर भी दो बार पुणे आए और हमारे घर ठहरे। इसी दौरान MAGA द्वारा पुणे में खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया था। वे ठंड के दिन थे। इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए पवनपुत्र के कुछ विद्यार्थी अपने अभिभावकों के साथ आए थे। प्रतियोगिता सम्पन्न होने तक ये सभी हमारे घर में ठहरे, इस खुशी को शब्दों में मैं बयां नहीं कर पा रहा हूँ। हल्का-सा कुछ याद आ रहा है कि उसी दरम्यान महाराष्ट्र के किलारी में भयंकर भूकंप भी आया था, जहां जान-माल की काफी हानि हुई थी।

धीरे-धीरे पुणे का जीवन भारी लगने लगा, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में पवनपुत्र व्यायामशाला और श्रीमल्हार निवास का काम-काज धीमा पड़ गया था। लगभग 2008 तक सब कुछ ऐसा ही चलता रहा। पवनपुत्र के विद्यार्थियों में अनुशासन था, इसलिए मेरी अनुपस्थिति में वे आपस में एक-दूसरे की सहायता से अभ्यास करते थे। घर से अधिक मुझे पवनपुत्र की चिंता लगी रहती थी। रहने के लिए पुणे और कुर्ला में घर हो गए थे, इसलिए समय-समय पर इनका देखभाल भी जरूरी था। आखिर पुणे से मुंबई लौटना हमारी मजबूरी बन गई थी और एक दिन हम पुणे से पुनः मुंबई लौट आए। उम्र के साथ मेरा मन अब अनमना-सा रहने लगा था, इसलिए श्रीपवनपुत्र के द्वार पर बैठकर मैं नियमित रूप से गीता के अध्याय का पठन करता था।

24

देश-विदेश में हमारी यात्राएं

विजया को देश-विदेश यात्राओं का शौक था। मुझे भी था, मगर विदेशों में पर्यटन स्थलों को देखने से ज्यादा मुझे वहां के स्पोर्ट्स की गतिविधियों और उपलब्ध साधन सुविधाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने में रुचि अधिक थी। वैसे भी जिमनास्टिक प्रतियोगिताओं के निमित्त पटियाला, आसाम, मणिपुर, झांसी आदि के अलावा भारत के कई राज्यों एवं प्रदेशों में जाने का एवं घूमने का अवसर तो मिला ही, साथ ही कुछ धार्मिक स्थलों पर भी गए। 2009 में हमने धरती का स्वर्ग कहे जाने वाले काश्मीर की यात्रा मंदार ट्रावेल्स के माध्यम से की। नवंबर 2017 में पीठापुर दर्शन भाग्यश्री ट्रावेल्स के माध्यम से किया। 2018 में पाली, भिलार, वाई और तापोळा की यात्रा हमने की। वहां सातारा के सुजीत शेडगे का सानिध्य हमें मिला। जनवरी 2018 में हमने गोवा की यात्रा की। गोवा के बारे में आप सभी लोग बेहतर जानते हैं। विश्व के प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों में इसका समावेश है। गोवा में हम रीटा के घर ठहरे थे। फरवरी 2018 में हमने धार्मिक स्थल जेजुरी दर्शन अमित रावते के संग किया। अगस्त 2018 में हम शिवथरघळ में गए जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। इसकी पहचान सुंदर मठ के रूप में भी है। महाड से 34 किमी दूर बारसगांव में एक प्रसिद्ध एतिहासिक गुफा भी वहां है। यहाँ समर्थ रामदास 22 वर्षों तक रहे थे। यहीं पर राजा शिवछत्रपति शिवाजी महाराज एवं समर्थ रामदास की पहली मुलाकात हुई थी। यह जगह चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी है, इसलिए

बरसात के मौसम में कई जगहों पर मनोरम धबधबा तथा हरियाली के नयनरम्य दृश्य पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। दिसंबर 2018 में खांडस गए जो भीमाशंकर ट्रेक के लिए स्टार्टिंग पॉइंट है। बरसात के मौसम में यहां पर्यटकों की खासी भीड़ होती है। मुख्यरूप से ट्रेकिंग करने वाले लोग इस स्थल को अच्छी तरह से जानते हैं।

हमने अपनी पहली विदेश यात्रा यूरोप में 5 जून, 2010 को सचिन ट्रॅवेल्स के माध्यम से की। यूरोप में तीन सप्ताह तक टूरिस्ट के माध्यम से घूमते रहे। वापसी यात्रा सचिन ट्रॅवेल्स द्वारा न करते हुए अपने विद्यार्थी हरेश राणे और प्राची (नायगांवर-राणे) के साथ उनके घर में 10 दिनों के लिए ठहर गए। भारत में इंजीनियरिंग की शिक्षा पूरी करके हरेश लंदन चला गया। अब कई वर्षों से लंदन में रहते हुए वह वहीं सेटल्ड हो गया है। मुझे वहां के जिमॅनास्टिक सेंटरों में जाकर जानकारी प्राप्त करनी थी। वहां हम सिर्फ प्राचीन खूबसूरत इमारतें, शॉपिंग मॉल और संग्रहालयों को नहीं देखना चाहते थे, क्योंकि गुजरते वक्त के साथ ये सब भूल जाता है। मुझे याद है, एक बार हम राजस्थान गए थे। वहां हमने बहुत सारे राजमहल, किले, झरने, संग्रहालय आदि देखें। उन किलों और राजमहलों की क्या विशेषताएं थीं, आज मुझे कुछ भी याद नहीं है। बहरहाल हरेश ने बड़े उत्साह से हमारा स्वागत किया। भारत की तुलना में वहां ठंड बहुत अधिक थी। मैं कहीं घूमने जाना नहीं चाहता था, क्योंकि ट्रैवेल कंपनी ने सब दिखा दिया था। वहां की लोक संस्कृति और खेल संबंधी गतिविधियों को जानने की मंशा मैंने हरेश को बताई, तो वह बहुत खुश हो गया। वह हमारी व्यायामशाला का विद्यार्थी था, इसलिए खुले मन से हम उसके साथ रह सकते थे। हरेश काफी वर्षों से वहां रह रहा था, जिससे उसने अपने पैर पूरी तरह से वहां जमा लिया था। प्राची से उसकी मुलाकात पवनपुत्र में हुई थी, और वे दोनों जीवन साथी बन गए।

मुझे याद है हरेश जब आचार्य मराठे कॉलेज में पढ़ रहा था, तब चंद्रशेखर ने उसे आचार्य कॉलेज से निकलकर रुईया कॉलेज में एडमिशन

लेने का सलाह दिया था। और उसने मान भी लिया था। कॉलेज का वातावरण बदल जाने से उसकी सोच भी बदल गई। हरेश खेल के साथ-साथ पढ़ाई में भी होशियार था। प्राची ने अपनी शिक्षा पूरी की और एक बँक में नौकरी करने लगी। आगे की ट्रेनिंग के लिए बैंक द्वारा उसे 'यूरोप' भेजा गया था। इसे संयोग ही कहा जा सकता है कि यूरोप में उन दोनों की पुनः मुलाकात हुई और आज वे जीवन साथी के रूप में फल फूल रहे हैं। उन्हें प्रसन्न देखकर मैं गदगद हो रहा था।

हरेश ने अपने स्कूटर से मुझे वहां के पुराने कॅनॉल्स दिखाए। पानी में बोट को माध्यम बनाकर किस तरह से लोग अपना व्यवसाय करते हैं, इसके बारे में बताया और बोट की यात्रा भी करवाई। अपनी प्रबल इच्छाशक्ति और व्यवसाय के बल पर उसने वहां 20 ब्लॉक्स खरीद लिए थे। उसने बताया की वह इनकी संख्या 200 तक करना चाहता है। मैंने उसकी चुटकी लेते हुए कहा, "अंग्रेजो ने हम पर इतने सालों तक राज किया था, अब तुम उन पर राज करो।" इस बात पर उसने मुस्कुराते हुए मेरे पैर छू लिए। अपने घर से लगभग 600 किमी दूर स्थित प्रसिद्ध लेखक शेक्सपियर का निवास स्थान भी उसने हमें दिखाया, जो मेरे लिए कुतूहल का विषय था। वहां का जनजीवन और वहां के लोगों की पसंद को देखकर मुझे काफी सुकून मिला। सारा यूरोप विशेषतः लंदन मनमोहक था। हमारे धारावी, चेंबूर की झोपड़पट्टियों और गरीब पिछड़े गांवों को देखते हुए भी अंग्रेजो ने हम पर इतने वर्षों तक न केवल राज किया, बल्कि चतुराई से अपना व्यापार भी किया। अपनी दूरदृष्टि और व्यापारिक स्वार्थ के चलते अंग्रेजो ने हमारे देश में रेलवे, सड़कें, बंदरगाह, पोस्ट, बैंक, एयरपोर्ट, स्कूल, कॉलेज जैसी सुविधाएं शुरू कीं। उसके बाद पूरी दुनिया में इनका प्रसार और विस्तार हुआ। एक दृष्टि से देखा जाए तो इन्हीं साधनों के कारण दुनिया का और हमारा भी विकास हुआ। वहां लोगों के हाव-भाव से मैं उन्हें परखने की कोशिश कर रहा था। यूरोप कितना भी आकर्षक क्यों ना हो, मुझे तो अपने भारत देश पर अभिमान हो रहा था। आखिर अपना देश तो सबको प्यारा लगता है।

11 फरवरी, 2010 को लंदन में हरेश के साथ वहां के एक जिमनास्टिक सेंटर का हमने दौरा किया। वहां कई शिक्षक थे, जिन्हें सुबह-शाम चार–चार घंटे की ड्यूटी दी गई थी। उस सेंटर में लगभग 1000 से अधिक बच्चे प्रशिक्षण ले रहे थे। कई इक्विपमेंट्स (एपरेट्स) लगे थे और प्रत्येक पर 4-5 प्रशिक्षुओं का एक समूह अभ्यास कर रहा था। एक प्रशिक्षक लगभग 20 मिनट तक प्रशिक्षण देता था। ट्रेनिंग के बाद बच्चे जब बाहर निकलते तो, उनके अभिभावक बाहर उनका इंतजार कर रहे होते थे। मुझे याद है जब मैं न्यूजीलैंड गया था तब चंद्रशेखर पाटील के साथ वहां के जिम्नस्टिक सेंटर का दौरा किया। सेंटर के अंदर 10-15 लड़के-लड़कियां अपने कोच के साथ स्वतंत्र रूप से ट्रैम्पोलिन बेड पर FX का प्रॅक्टिस कर रहे थे। इस तरह मुझे जब भी विदेश जाने का मौका मिला, तब मेरी कोशिश रही कि मैं वहां के जिम्नस्टिक सेंटर में जाकर प्रशिक्षण प्रक्रिया और साधन सामग्री की जानकारी प्राप्त करूं। यूरोप के बाद हमने सिंगापुर की यात्रा की। यह यात्रा भी हमने ट्रैवल कंपनी के माध्यम से की थी। इस यात्रा में आशिष प्रधान से मुलाकात हुई, जिसने सिंगापुर में हमारा स्वागत किया। चेंबूर हाईस्कूल की टीचर 'प्रधान मॅडम' का वह लड़का था, इसलिए अपनत्व की भावना से वह भी ओतप्रोत था। यात्रा के दौरान कोई तकलीफ नहीं हुई, इसलिए ये विदेश दौरा भी अच्छा रहा। इन यात्राओं में विजया भी मेरे साथ थी। 2010 से हमने विदेशों का दौरा शुरू किया था। वीणा वर्ल्ड ट्रैवल कंपनी के माध्यम से हमने अमेरिका की यात्रा 2017 में की थी। यह यात्रा भी कभी सुखद रही। वीणा वर्ल्ड ट्रैवल के माध्यम से ही 2019 नेपाल की भी सुखद यात्रा की। 2017 में ही हमने अंदमान-निकोबार की यात्रा अतुल प्रधान (चेंबूर) के साथ की। इसके कुछ वर्षों बाद हम अबुधाबी में भी गए। इस ट्रिप में विनीत देव्हारे भी हमारे साथ थे।

14 नवंबर, 2010 को पवनपुत्र का कार्यक्रम व्यायामशाला में होना था, उसे सफलता से सम्पन्न करने के बाद हम सचिन ट्रॅवेल्स के माध्यम से पहले ऑस्ट्रेलिया गए और उसके बाद न्यूज़ीलैंड गए। ऑस्ट्रेलिया में वहां के स्थानीय ग्रामीणों द्वारा प्रस्तुत एक लोकनृत्य का कार्यक्रम देखा, जो बिल्कुल

हमारे यहां के कातकारी समाज जैसा ही था। प्राप्त जानकारी के अनुसार यूरोपीय लोगों ने उनकी उपेक्षा की थी, इसलिए वहां के ग्रामीण लोग समुद्र तट पर बस गए थे। आज भी उनकी स्थिति वैसी ही है, जिसे देखकर मुझे बुरा लगा। ऑस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल भारत से ढ़ाई गुना अधिक है, मगर उसकी जनसंख्या मुंबई जितनी ही है। बावजूद इसके यूरोपियन लोगों ने दुनिया पर राज किया, यह आश्चर्य का विषय है। इसीलिए अमेरिका और कुछ अन्य देश यूरोपियन लोगों के साथ आज भी जुड़े हुए हैं।

यूरोप और सिंगापूर के बाद हमने न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया की यात्रा की, जिसका जिक्र ऊपर किया है। विदेशों में प्रसिद्ध पर्यटन स्थलों के साथ-साथ हम वहां के स्पोर्ट्स संस्थाओं में भी जाकर कुछ घंटों तक निरीक्षण करते थे। मेरे मन में विचार आता था कि काश! इस तरह के उपकरण, साधन सामग्री और सुविधाएं हमारे देश में भी होते तो....! वहां से लौटने के बाद विदेशों की अच्छी कल्पनाओं को, अपने स्तर पर लागू करने की मैंने कोशिश की। मुझे याद आ रहा है कि न्यूजीलैंड की राजधानी ऑकलैंड, नए युग के मुताबिक बिल्कुल आधुनिक और आकर्षक है। वहां हम चंद्रशेखर के घर गए, उसका अपना घर लकड़ी से बना था। चूंकि काम करने के लिए वहां मजदूर आसानी से नहीं मिलते, और यदि मिलते भी हैं तो बहुत महंगे होते हैं। इसलिए उसने अपनी पत्नी स्मिता (पुणे) के साथ शारीरिक श्रम करते हुए अपने इस घर का निर्माण किया था, ये मेरे लिए आश्चर्य का विषय था। चंद्रशेखर की मां भी उसके साथ थी। सबसे पहले उसी ने हमारा स्वागत सत्कार किया। उसने पैंट-शर्ट पहन रखा था। चंद्रशेखर की माँ ने वहां हमें कुछ गार्डेन्स एवं पर्यटन स्थल दिखाए। ठंड अधिक थी इसलिए विजया को भी साड़ी की बजाय पैंट-शर्ट, दस्ताने आदि पहनने पड़े। शादी के बाद उसने कभी पैंट-शर्ट नहीं पहना था, इसलिए प्रारंभ में उसे अटपटा सा लगा। वहां से हम दक्षिणी सिरे पर स्थित ॲन्टार्टिका की एक दिन की यात्रा की। खर्च का भार चंद्रशेखर ने यह कहते हुए उठाया कि "यदि मेरे पिताजी आते तो क्या उनका खर्च मैं नहीं उठाता ?" ऐसा कहकर उसने हमारा मुंह बंद कर दिया था। दिन भर हम

बोट से घूमते रहे। इस दौरान हमने समुद्र में तैरते हुए बर्फ के पहाड़ों को देखा, जो हमारे लिए एक अद्‌भुत नजारा था। लंदन के उत्तरी छोर से दक्षिणी छोर तक की यह यात्रा बेहद मनोरम थी। विदेश में भी मैं रोज सुबह-सुबह 'गीता' का पठन करता था। मेरी इस नियमित दिनचर्या को देखकर उन्हें भी अच्छा लगा। चंद्रशेखर की मां सुबह-सुबह झाड़ू से घर-आंगन और परिसर की सफाई करती थी। उसे वहां की नागरिकता भी मिल गई थी, इसलिए उसकी दवाइयों एवं डॉक्टर आदि की जिम्मेदारी वहां के सरकार की थी। यह व्यवस्था मुझे बहुत अच्छी लगी। स्मिता और शेखर दोनों नौकरी करते थे, इसलिए घर में रोज खाना नहीं बनता था। ब्रेड के विविध प्रकार जैसे गेंहू से बने बिस्किट्स, जाम-ब्रेड, सॉस-ब्रेड आदि से भोजन का काम चलाना पड़ता था। हमने देखा कि कई भारतीय लोग भी वहां बस गए थे और वे होटेल्स में भोजन बनाने का काम करते थे। वहां के आम लोगों को अपने घर का सारा काम खुद करते देखा। भारत की तरह वहां मेड, मजदूर, घरेलू कामगार, मॅकेनिक, प्लंबर, इलेक्ट्रिशियन आदि बड़ी मुश्किल से मिलते हैं और मिलते भी हैं तो बड़े महंगे होते हैं। इसलिए घर का छोटा-मोटा काम वहां के लोग खुद करते हैं।

चंद्रशेखर का बेटा 'मिहीर' स्विमिंग सीख रहा था, यह देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया। यहां भी कुछ जिमनास्टिक सेंटर देखने का मौका हमें मिला। उन सेंटरों में उपलब्ध अत्याधुनिक साधन सुविधाओं को देखकर मैं अभिभूत हो गया। यूरोपीय देशों को एथलिटिक्स और जिमनास्टिक प्रतियोगिताओं में इतने पुरस्कार क्यों मिलते हैं, इसका जवाब मुझे मिल गया था। वहां के स्कूल, कॉलेज भी देखें। फुटबॉल मैदान से लगकर ही छोटे बच्चों के लिए एक्सरसाइज तथा खेल के इक्विपमेंट्स लगे थे। ट्रेनर की बजाय बच्चे स्वयं अभ्यास करके अपने आपको विकसित कर रहे थे। उनकी सेल्फ लर्निंग की यह सोच मुझे प्रेरणादायी लगी। स्कूल के बाद और रिसेस में बच्चे इन इक्विपमेंट्स पर एक्सरसाइज करते नजर आए। इन बच्चों के घर दूर-दूर होते हैं, इसलिए कार या बस से उन्हें सफर करना पड़ता है। सड़कों पर बड़ी संख्या में हाफ पैंट में लोगों को जॉगिंग,

सायक्लिंग और रनिंग करते देखकर मुझे लगा। धूप न होने की वजह से दोपहर दो बजे भी लोगों को जॉगिंग करते देखना मेरे लिए सुखद आश्चर्य का विषय था।

एक दिन ऐसा हुआ कि चंद्रशेखर के घर का हीटर बिगड़ गया था और हमें उस दिन कड़ाके की ठंड में स्नान करना पड़ा। शाम को ऑफिस से आने के बाद उस हीटर को चंद्रशेखर ने खुद दुरुस्त किया। वहां कपड़े धोने की मशीन और मशीन में ही बाफ की सहायता से कपड़े सुखाने की प्रक्रिया, उस दौर में मुझे चकित कर गई। वहां धूप नहीं के बराबर होती है, इसलिए कपड़े सुखाने और हीटर की व्यवस्था वहां बहुत पहले से मौजूद थी, जो हमारे देश में बहुत बाद में आई। चंद्रशेखर की पत्नी स्मिता वहां बच्चों के साथ बच्चा बनकर खेलते हुए मजे ले रही थी, यह देखकर मुझे सुखद लगा। वह खुद एक जिम्नास्ट थी, इसलिए पेड़ की डालियों पर लटकते हुए बच्चों को भी एक्सरसाइज सिखाती थी।

अपनी ऑस्ट्रेलिया यात्रा के दौरान पहले दो दिन हम बेचैन रहे, क्योंकि तब वहां स्कूलों की छुट्टियां चल रही थी। आम तौर पर वहां 10वीं की परीक्षा के बाद स्कूली बच्चों को दो दिन के लिए कहीं पिकनिक पर ले जाया जाता है, या फिर बच्चे खुद चले जाते हैं। उन्हें इन छुट्टियों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है। लड़के, लड़कियां और टीचर मिलकर पिकनिक पर बाहर घुमने जाते हैं। लेकिन वहां बच्चों का उन्मुक्त आचरण हमसे देखा नहीं गया। लड़के–लड़कियों का खुलकर गले लगना, एक दूसरे को किस करना, टाइट हग करना आदि सब हमारी मर्यादा के बाहर था। वहां के अभिभावकों का मानना है कि 'बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, तो अपना भला बुरा वे खुद समझने लग जाते हैं। हमारी उन पर कोई बंदिश नहीं होती है।' यह सुनकर हम उनके मुंह ताकते रह गए। मगर उन्हें क्या दोष देना! अब तो खुलेपन की ये हवा हमारे देश में भी बहने लगी है। हमारी भारतीय संस्कृति में कहें तो वह प्यार कम और स्वैराचार अधिक था। इसके बारे में पढ़कर या फिल्मों में देखकर हमें कुछ जानकारी तो थी, मगर प्रत्यक्ष रूप से देखने

का अनुभव चौंकाने वाला था। मैंने अनुभव किया कि ऑस्ट्रेलिया में 12 वीं सायन्स में लिनियर मोशन और सर्कुलर मोशन प्रमुखता से पढ़ाया जाता है। प्रशिक्षण के दौरान विदेशी कोच हमें सिर्फ 80 फीसदी ज्ञान देते हैं, शेष 20 फीसदी ज्ञान नहीं देते, ताकि दुनिया में उनका वर्चस्व बना रहे।

इस विदेश यात्रा के दौरान एक दिन अचानक विजया के पेट में असहनीय दर्द होने लगा, जिससे वह परेशान हो गई थी। शेखर की मां ने गरम पानी की थैली से पेट की सिंकाई की। सिंकाई से उसे कुछ राहत मिल जाती थी मगर कुछ देर बाद पेट दर्द फिर से शुरू हो जाता था। इससे हम सभी परेशान हो गए थे। बहरहाल हमारी वापसी यात्रा व्हाया सिंगापुर थी, जो लंबा हवाई सफर था। सफर के दौरान भी विजया को दो बार पेट दर्द से जूझना पड़ा। बीच में आठ घंटे का ब्रेक था, इससे उसे और भी परेशानी हुई। भारत आने के बाद भी उसका यह दर्द जारी था। इसलिए पहले उसे हमने हिंदुजा अस्पताल में भरती किया, जहां उसे पंद्रह दिनों तक रखा गया। डॉक्टरों के मुताबिक उसकी बड़ी आंत में मरोड़ आ गया था जिससे उसके पेट में अन्न नहीं टिक रहा था। सिर्फ पानी और ज्यूस पर वह दिन गुजार रही थी। एक दिन मुझे जानकारी मिली कि डॉ. जॉय पाटणकर, मुंबई के एक प्रसिद्ध डॉक्टर हैं, जो पवनपुत्र के पूर्व छात्र भी थे। उनका जॉय हॉस्पिटल चेंबूर में ही हमारे घर के पास था। इसलिए विजया को जॉय हॉस्पिटल में शिफ्ट किया गया। यहां उसकी बड़ी आंत का लगभग बारह इंच का हिस्सा काटकर निकाल दिया गया। कुछ दिनों बाद जब वह कुछ स्वस्थ हुई, तब एक दिन बैंक जा रही थी और अपनी मारूती कार से उतरते समय उसका लचक गया। डॉक्टर के पास जाने के बाद पता चला की उसका पैर फ्रॅक्चर हो गया। इसका ऑपरेशन चेंबूर के डॉ. विनोद करकरे के पास करवाना पड़ा। विजया की सेहत ठीक नहीं चल रही थी, इसलिए डॉक्टरों ने उसे जरूरत से ज्यादा चलने और भाग-दौड़ करने से मना किया था। मगर डॉक्टरों की बात वह कहां सुनने वाली थी ! उसने मन में यह गलतफहमी पाल रखी थी की उसका पति तो कुछ करने वाला है नहीं, इसलिए घर और किचन का सारा काम उसे ही करना पड़ेगा। मैंने उसे काम करने से मना

किया, मगर उसका मुझ पर भरोसा नहीं था। उन दिनों वह पानी कम पीती थी, जिसके कारण आगे चलकर उसे हर्निया और पित्ताशय में पथरी की शिकायत हो गई। इसका भी इलाज करवाना पड़ा। इस तरह उसे चार बार छोटे-बड़े सर्जरी और इलाज के दौर से गुजरना पड़ा। खर्च जो होना था सो हुआ, मगर मानसिक तनाव का क्या करें ? घर में शांति बनी रहे इसलिए चुप रहने में ही मैंने अपनी भलाई समझी। मैं सोच रहा था कि, ये सब कहीं स्ट्रेस का परिणाम तो नहीं ? खैर कुछ महीनों तक यह सब झेलना पड़ा, जो बड़ा कष्टदायी था।

विजया को प्रकृति की गोद में घूमना अच्छा लगता था, इसलिए विभिन्न राज्यों के राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में वह प्रायः मेरे साथ हुआ करती थी। 1992, में पहले माताजी फिर पिताजी, एक के बाद एक इस दुनिया को अलविदा कहकर चल दिए। बड़ा दुखद वर्ष रहा यह। इसके बाद 1994 में मंजूश्री चिवटे (भांड) की आकस्मिक मृत्यु हो गई। मंजुश्री के जाने के बाद बच्चों के साथ मन लगाना कितना मुश्किल होता है इसका एहसास हुआ। और मैंने सार्वजनिक जीवन से यही रुकने का फैसला कर लिया। उसी दौरान निर्गुण की उपासना करने वाले दूरस्थ गुरु श्री श्री आनंद मूर्ति के भी निधन की सूचना मिली। दरअसल उस दिन वो चटाई पर जाकर सो गए और बोले, 'बहुत हो गया अब' और उन्होंने देंह त्याग दिया। व्यायामशाला की जिम्मेदारी मैंने कम कर ली थी। 1997 में मेरी सेवानिवृत्ति के बाद अपनी मारूती कार से सैर सपाटा करते हुए, मौज-मस्ती से जीवन जीने का मन लिया था। मगर फिर अंधेरी स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स की गतिविधियों में उलझ गया। जनवरी 1992 में जब बीपीटी से 800 लोगों की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की घोषणा हुई, तब विजया ने भी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली। उसके बाद पूरी तरह से वह घर की जिम्मेदारियों को संभालने लगी थी। एक-दो बार उसने पार्ट टाइम जॉब के लिए प्रयास भी किया मगर सफल नहीं हो सकी।

कोविड-19 का आतंक

सन् 2019 में 'कोविड-19' के रूप में एक वैश्विक आपदा आई, जिसने कई लोगों की जिंदगी में उथल-पुथल मचा दी। मेरी जिंदगी में भी इसका प्रभाव पड़ा। इस 'कोविड-19' ने हमें दो वृद्धाश्रमों से परिचय करवाया। दरअसल घर में काम करने वाला और हमारे बुढ़ापे की जिम्मेदारियों को संभालने वाला कोई नहीं था, इसलिए 'कोविड-19' के दौर में वृद्धाश्रम के अलावा हमारे पास और कोई चारा नजर नहीं आ रहा था। भीड़ भाड़ से दूर रहना सुरक्षा का मानक बन गया था। देश-दुनिया पूरी तरह से ठप्प हो चुकी थी। लोगों का आपस में मिलना-जुलना बंद हो गया था। घर से बाहर निकालना सुरक्षित नहीं था। अपने आपको घर में कैद कर लेना लोगों की मजबूरी बन गई थी। मुंबई की व्यस्त सड़कें बिल्कुल शांत हो गई थीं। दिहाड़ी मजदूर, गरीब श्रमिक मुंबई से अपने गांव की ओर पलायन कर रहे थे। कोविड-19 का नाम लेते ही हमारी आंखों के सामने उस दौर के दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। हमारा अपना घर होते हुए भी सीनियर सिटिज़न होम या वृद्धाश्रम जाना हमारी मजबूरी थी क्योंकि भीड़भाड़ वाले शहरों और महानगरों में कोविड का आतंक अधिक था। पहले तो हम पनवेल स्थित हीरानंदानी कॉम्प्लेक्स के ओल्ड एज होम में गए। ये बिल्कुल नया प्रोजेक्ट था, इसलिए काफी लोनली था। यहां हमारा मन नहीं लग रहा था। इसलिए कुछ दिनों बाद हम पनवेल के ही कानसोल स्थित "स्नेह बंधन वृद्धाश्रम" में शिफ्ट हो गए। दोनों जगहों पर भी सामाजिक जीवन और

आपसी मेल-मिलाप पर प्रतिबंध लगाया गया था। दुकानें और मेडिकल शॉप्स आदि का अभाव था। मगर खाना–पीना, चाय-नास्ता आदि समय से मिल जाता था। प्रकृति का आनंद लेते हुए घूमना टहलना हो जाता था। कानसाल में पुराण और आध्यात्मिक के साथ अन्य कई तरह की किताबें थीं, जिसका हमने खूब लाभ उठाया। कुछ दिनों बाद सख्त क्वॉरेंन्टाइन के कारण सुबह-शाम का टहलना भी बंद हो गया। कोरोना का आतंक जब कम हुआ तो दो बार हमारा टीकाकरण भी हुआ। स्थिति धीरे-धीरे सामान्य हो रही थी। वहां किताबों से गुजरते हुए मैंने एक जगह पढ़ा कि अमुक एक व्यक्ति ने 80-90 वर्ष की आयु में लिखना आरंभ किया और उसने कुछ धार्मिक साहित्य का सृजन किया। इस सूचना ने मेरे भीतर लिखने की लालसा जगा दी और मैं भी लिखने का प्रयास करने लगा। लेखन ने गति पकड़ी, जिसके तहत घर-परिवार, व्यायामशाला, जिम्नास्टिक, मलखांब, सामाजिक कार्य आदि से संबंधित बातें, अनुभव आदि कागज पर उतारने लगा। विजया साथ थी, इसलिए वृद्धाश्रम में अकेलापन महसूस नहीं हुआ। कोरोना का आतंक खत्म होने के बाद हम अपने घर लौट आए। अपने घर लौटने का सुख कुछ अधिक ही आनंददायी था।

जीवन रूपी संसार का रथ पति–पत्नी नामक दो पहियों पर टिका होता है। धीरे-धीरे ही सही मगर हमारे जीवन की गाड़ी इन दो पहियों पर ठीक-ठाक चल रही थी। विजया अब भी पूरी तरह से स्वस्थ नहीं हुई थी, बावजूद इसके घर की साफ-सफाई, रसोई, सजावट, सजना-संवारना आदि काम अपनी इच्छाशक्ति के बल पर कर लेती थी। बावजूद इसके हम सुबह–शाम टहलने भी जाते थे। जीवन के रास्ते साफ थे, इच्छाशक्ति भी दृढ़ थी, मगर शारीरिक दुर्बलता का क्या करते ? अब हम जीवन के अमृतमहोत्सवी वर्ष (75 वें साल) में प्रवेश कर चुके थे। इस उम्र में शारीरिक व्याधियां अपेक्षित थीं। जहां तक मुझे लगता है जीवन में मैंने जो स्पोर्ट्स की गतिविधियां की थी, उसके चलते हमने अभी बिस्तर नहीं पकड़ा था। अकेले के दम पर चल फिर लेते थे। यह हमारे लिए सुखद बात थी। कुर्ला के कामगार नगर में 15-20 विद्यार्थियों के लिए एक व्यायाम सेंटर चल रहा था,

जो कोविड के कारण कुछ समय के लिए बंद हो गया था। कोविड के बाद उसे पुनः शुरू किया गया और अब उसमें 40 से अधिक विद्यार्थी प्रशिक्षण ले रहे हैं। इस सेंटेर की जिम्मेदारी तारळकर और डॉ. सुषमा अररूळकर सम्भाल रहे हैं। इस सेंटर को विस्तार देने की योजना मन में कई दिनों से चल रही है पर सामने कई मजबूरियां भी खड़ी हैं। इसमें से रास्ता निकालने की कोशिश जारी है।

26

अध्यात्म की ओर बढ़ते कदम

2008 में झाँसी स्थित पंडोखर सरकार नामक जगह पर हम प्रतियोगिताओं के सिलसिले में गए थे। यहीं से मेरी अध्यात्मिक यात्रा शुरू हुई, जो कालांतर में महाब्रह्मर्षि जगतगुरु कुमार स्वामी तक पहुँच गई। जगतगुरु कुमार स्वामी के विश्वभर के 124 देशों में 60 करोड़ से अधिक फॉलोवर्स हैं। अपनी पंजाब यात्रा के दौरान अंबाला के 'शक्तिपीठ' आश्रम में मैं उनसे मिलने गया था। इसके पहले 1970 में मैं श्री श्री आनंद मूर्ति से मिला था। उनकी आध्यात्मिक शक्ति का मुझ पर काफी प्रभाव हुआ। 2013 में मुझे आत्मिक शांति मिली, जब श्री श्री आनंद मूर्ति ने औरंगाबाद से दूर एक पहाड़ी इलाके में स्थित अपने आश्रम में अपने गले की रुद्राक्ष माला मेरे गले में डाल दी। उससे मुझे काफी सहारा मिला और मानसिक शांति भी मिली। आज इस अवस्था में अध्यात्म मेरा प्रिय विषय जरूर बन गया है, पर किसी बाबा या स्वामी के अधीन होकर मैं कभी नहीं रहा। जीवन में कई अच्छे विचारकों एवं आध्यात्मिक लोगों से मुलाकाते हुई, लेकिन मैं कभी किसी का अंध भक्त नहीं बना। धार्मिक पोथी, ग्रंथ या पुस्तकें जरूर पढ़ता था। मेरी ये वाचन यात्रा आज भी जारी है। आद्य गुरु नवनाथ महाराज की पोथी का पठन-पाठन आज भी नियमित रूप से करता हूँ। मलखांब, जिम्नास्टिक, आसन या व्यायाम शुरू करने से पहले मैं देवी-देवताओं और अपने गुरु का स्मरण प्रारंभ से ही करता रहा हूँ। चुनाभट्टी–कुर्ला स्थित अवधूत पीठ के जाधव बाबा का स्नेहाधार मुझे 1970 से ही मिलता रहा है। मेरा मानना है कि एक विशिष्ठ उम्र के बाद इंसान को अध्यात्म की ओर रुख

कर लेना चाहिए। इससे बुरी शक्तियों एवं बुरे विचारों से संरक्षण मिलता है। अंतर्मन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। जिंदगी के इस पड़ाव पर जितना संभव है, आज भी साथियों के साथ छोटी- बड़ी आध्यात्मिक यात्राएं करने की कोशिश जारी है। हाल ही में अर्थात मई 2025 में नर्मदा परिक्रमा की सुकून भरी यात्रा पूरी की।

आधुनिक टेक्नोलॉजी के चलते आज विश्व एक ग्लोबल विलेज में परिवर्तित होते जा रहा है, इससे कई दृष्टिकोण से देश दुनिया का विकास तेजी से हो रहा है। मगर दुख इस बात का है कि विकास की इस तेज रफ्तार में "मानवता" लुप्त होती जा रही है। मेल-मुलाकात के लिए आज किसी के पास समय नहीं है। इंदौर के पूर्णवादाचार्य रामचन्द्र बुवा पारनेरकर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'भीतर से मनुष्य आज भी वही पुराना आदमी है, मगर आज उसकी जीवन शैली एवं जरूरतें बदल गई हैं। वह जाने– अनजाने में एक अंधी रेस का शिकार होते जा रहा है। जिससे जीवन में कई तरह के तनाव बढ़ते जा रहे हैं। परिणामतः इंसान आज कई नई तरह की बिमारियों का शिकार भी हो रहा है।' माना कि जीवन में पैसा बहुत कुछ हो सकता है पर सब कुछ नहीं हो सकता। पैसे से हंसी मिल सकती है मगर खुशी नहीं। पैसा बिस्तर दे सकता है मगर नींद नहीं। पैसा किताबें दे सकता है मगर ज्ञान नहीं। पैसा घड़ी दे सकता है मगर समय नहीं दे सकता। पैसा साथी दे सकता है मगर जीवन साथी नहीं। पैसा खाना और दवा दे सकता है, मगर दुवा नहीं। इसलिए पैसे को कितनी अहमियत दी जानी चाहिए, इस पर हर व्यक्ति को सोचना चाहिए। ज़िंदगी के इस खेल मे ना तो खिलाड़ी बदले जा सकते हैं, और ना ही खेल दुबारा खेला जा सकता है, इसलिए नियति ने हमें जो भूमिका दी है, उस किरदार को हमें ईमानदारी से निभाना चाहिए। अध्यात्म हमें यही सिखाता है। इस पर गौर करते हुए इस कीमती जीवन में कुछ सार्थक करने की कोशिश की जानी चाहिए। इस विषय को यहीं विराम देते हुए आगे बढ़ते हैं।

तन, मन और जीवन के बीच संवाद

अब हम जीवन के उस पड़ाव पर थे, जहां तन, मन और जीवन के बीच संवाद होना बेहद जरूरी होता है। इस उम्र में धन से ज्यादा आनंद का महत्व होता है। मैंने कहीं पढ़ा था-

'आनंद वहां नहीं जहां धन मिले,
आनंद तो वहां है जहां मन मिले।'

पिताजी के नक्शेकदम पर चलते हुए मैं प्रारंभ से ही स्पोर्ट्स और सामाजिक कार्यों से जुड़ा रहा। शिक्षा जगत के साथ-साथ कई खेल प्रतियोगिताओं में भी शामिल होता रहा। इससे मुझे जीवन का आनंद मिल रहा था। घर-परिवार की जिम्मेदारियों से मुक्त था। मगर विजया जब जीवन में आई तब घर परिवार की जिम्मेदारियों का एहसास होने लगा। वह खुद भी मेरे साथ खेल गतिविधियों से जुड़ गई। घर से अधिक मुझे सामाजिक जिम्मेदारियों और पवनपुत्र की चिंता लगी रहती थी। विजया घर-परिवार की जिम्मेदारियों को संभालते हुए मेरे कंधे से कंधा मिलाकर मेरे सामाजिक जिम्मेदारियों का भार भी सम्भाल रही थी। इसमें उसे आनंद मिलता था। सामाजिक काम इतना आसान नहीं होता है। इसमें बड़े धैर्य की जरूरत होती है। हमेशा सावधान एवं सतर्क रहना पड़ता है। कई तरह की विचार धाराओं वाले लोगों से रोज पाला पड़ता है। कुछ लोग त्यागवृत्ति से काम करते हैं, तो कुछ निजी स्वार्थ से प्रेरित होकर समाज सेवा के क्षेत्र में आते हैं। उनका अपना विशेष लक्ष्य होता है। कुछ लोग तो इसे सीढ़ी बनाकर नेता बन जाते हैं, मगर नेता बनने के बाद जब सामाजिक जिम्मेदारियों को

भुलाकर येन-केन प्रकारेण पैसा कमाने, सत्ता एवं पद हथियाने की राजनीति करने लगते हैं, तब बड़ी पीड़ा होती है। ऐसे लोग भी मेरे जीवन में आएं, मगर मुझे सत्ता का लोभ कभी नहीं था।

ऐसे कई लोगों को मैंने देखा है जो अपना स्वार्थ साधने के लिए किसी भी हद से गुजरने के लिए तैयार रहते हैं। वे लोग अपना गणित बेहतर जानते हैं। इतनी बड़ी सामाजिक जिंदगी में इस नीति में मैं हमेशा गंवार बना रहा, क्योंकि सत्ता एवं पद की राजनीति कभी मेरे समझ में नहीं आई। त्याग एवं समर्पण भाव से काम करना मेरी संस्कृति थी। माता-पिता, गुरुजनों से मुझे यही संस्कार मुझे विरासत में मिले थे। इसलिए आज भी आम आदमी की भीड़ का मैं एक हिस्सा हूँ। इस बात का ना तो मुझे कोई दुख है ना ही कोई मलाल। क्योंकि मेरा मकसद खेल को बढ़ावा देना और नई पीढ़ी को इसके गुर सिखाना था। अधिक से अधिक विद्यार्थियों को ट्रेनिंग देकर उन्हें अच्छा खिलाड़ी बनाना मेरा मुख्य ध्येय था। अपने इस उद्देश्य को साध्य करने हेतु आजीवन अपनी सेवाएं समर्पित भाव से देता रहा। इस काम में मुझे बड़ा आनंद आता था, आज भी आता है।

आज उम्र के इस पड़ाव पर मैदान में कलाबाजी दिखाने में भले ही असमर्थ हूँ, पर इसके थिअरी पार्ट को विद्यार्थियों के बीच साझा करने में समर्थ हूँ। सभी अपनी किस्मत की रोटी खाते हैं। कहते हैं ना- 'जिसने काया दी है वही चुग्गा भी देता है।' जो मेरी किस्मत में था वह मुझे मिला, भरपूर मिला। मुझे किसी से कोई शिकवा शिकायत नहीं है। जीवन में जो मिला, जितना मिला, उससे संतुष्ट हूँ। अपने दैनिक कार्यों के साथ तन, मन और जीवन के बीच निरंतर संवाद होते रहना चाहिए। जीवन में इस सूत्र का पालन किया। उसी का नतीजा है कि आज मैं अपने आपको साफ़गोई से व्यक्त कर पा रहा हूँ। सुकून की नींद सोता हूँ। इस औचित्य पर संत कबीर का एक दोहा याद आ रहा है –

"माया मरी न मन मरे, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गए दास कबीर।।"

इस दोहे में जीवन का मर्म छिपा है। इसे समझाने की नहीं, बल्कि समझने की जरूरत है। जीवन के अंतिम क्षणों तक इंसान मोह, माया, आशा-निराशा और मन के भटकाव का शिकार होता रहता है। मन की तृष्णा कभी खत्म नहीं होती। इस पर काबू पाना ही सुखी जीवन का मर्म है।

विल (वसीयतनामा) बनाने का काम

कुछ वर्ष पहले मेरे मित्र आनंद सान्डू के भतीजे अजीत सांडू ने अपने व्हाट्सएप ग्रुप का मुझे सदस्य बनाया, जिसमें विविध प्रकार की सूचनाएं एवं संदेश रोज मिलने लगे थे। ऐसे ही एक दिन ग्रुप पर विल (वसीयतनामा) बनाने और इसकी आवश्यकता पर चर्चा छिड़ी थी। इसके बारे में मैंने विजया से चर्चा की। विल बनाने का काम आवश्यक है, कहते हुए वह राजी हो गई। मैं भी इसे जल्द निबटाना चाहता था, मगर रोजमर्रा की उलझनों में फंसता गया और इस बारे में सोचने का समय ही नहीं मिला। जिससे यह महत्वपूर्ण काम टलता रहा। विजया जब अस्पताल में भरती थी, तब बिस्तर पर लेटे-लेटे उसने एक कागज पर विल संबंधी मुद्दों को नोट किया और हस्ताक्षर करके मुझे सौंप दिया। तब सरसरी नजर से मैंने उसे एक बार देख लिया था और एक किनारे रख दिया। आज इतने वर्षों के बाद जब यह बात याद आई तो कागज के उस पुलिंदे को फिर से पढ़कर देखा, तो उसने अपने भरसक सारे मुद्दे ठीक से कवर किए थे। इसका मुझे काफी समाधान हो रहा है। अब मुसीबत यह थी कि सरकारी कार्यालय में इसका रजिस्ट्रेशन नहीं हो पाया था। कुछ लोगों से जब इसकी चर्चा की तो पता चला की पंजीकरण अनिवार्य नहीं होता है। इससे कुछ तसल्ली मिली और मैंने राहत की सांस ली। इस उम्र में हर काम के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। घर–परिवार के प्रति पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं अधिक संवेदनशील एवं जिम्मेदार होती हैं, इस बात का सार्थक एहसास विजया ने इस विल के

माध्यम से कराया। आगे की परेशानियों को टालने के लिए समय से विल बनाना बेहद जरूरी होता है।

29

जो आया है सो जाएगा....

सन् 2023 की वह सर्वपितृ अमवस्या थी। विजया घर में अकेली थी। वह भी अब 80 की उम्र पार कर चुकी थी। उस रात पलंग से वह नीचे गिर गई और उठ नहीं पाई। उसे कोई उठाने वाला नहीं था। उस रात मुझे भी गहरीं नींद लग गई थी। संभवतः दवाइयों का असर रहा होगा। रात 3 बजे से सुबह 6 बजे तक वह उसी तरह जमीन पर पड़ी रही। वह सर्वपितृ अमवस्या की रात थी। उसके बाद जब सबेरा हुआ और मुझे पता चला तो पास-पड़ोस एवं रिश्तेदारों को बुलाकर किसी तरह उसे अस्पताल ले जाया गया। इस आड़े वक्त में बहन का लड़का अर्थात मेरा भांजा कुलदीप दाते और उसकी पत्नी सिद्धिका की डॉक्टरी बहुत काम आई। मुसीबत की इस घड़ी में विनीत देव्हारे तन, मन और धन से मदद के लिए साथ खड़ा था। उस दिन तूफान और बारिश का मौसम था, जिसका सामना करते हुए, विजया का इलाज सफलता पूर्वक कराया गया। कुछ दिनों बाद विजया स्वस्थ हुई। 17 जनवरी, 2023 को उसका 80 वां जन्मदिन अर्थात सहस्त्र चंद्रदर्शन का कार्यक्रम बड़े धूमधाम से मनाया गया। ऐसी मान्यता है कि 80 साल की उम्र में इंसान अपने जीवन में सहस्त्रों बार चंद्रदर्शन कर लेता है। यह सौभाग्य सभी को नहीं मिलता। इस कार्यक्रम में मित्र-परिवार बड़ी संख्या में उपस्थित थे। उसके ऑफिस की कुछ सखियां भी इस अवसर पर उपस्थित थीं। सबकी शुभकानाएं विजया को मिली, वह बहुत खुश थी। उसका उत्साह बढ़ गया था। हमने नए सिरे से जीवन को आरंभ किया। मन उत्साहित था पर तन का क्या करते? विजया शारीरिक रूप से कमजोर हो

गई थी। थकी-थकी सी महसूस करती थी। धीरे-धीरे दिन किसी तरह से गुजर रहे थे। कबीर कहते हैं -

"जो आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ गए, एक बंधे जंजीर।"

अर्थात मृत्यु अंतिम सत्य है, यह प्रकृति का नियम है। जन्म ही मृत्यु का कारण है। जिसने जन्म लिया उसे मरना है तथा जो मरा है, उसे पुनः जन्म लेना है। इसीलिए इस लोक को मृत्यु लोक कहा गया है। शरीर नष्ट हो जाता है मगर आत्मा का नाश नहीं होता। वह किसी दूसरे रूप में पुनः जन्म लेता है। विजया के साथ भी यही हुआ। अंततः 15 फरवरी, 2024 का वह दुर्भाग्य भरा दिन आया और विजया ने इस लोक को अलविदा कह दिया। मुझे अकेला तनहा छोड़कर वह इस लोक को छोड़कर किसी दूसरे लोक में चली गई। देखा जाए तो पति-पत्नी वास्तविक रूप से बुढ़ापे में एक दूसरे की लाठी होते हैं, मगर मेरी लाठी तो खो गई थी। मेरा सहारा चला गया था। इस पीड़ा को इस समय मैं शब्दों में बयां नहीं कर पा रहा हूँ। मेरे जीवन का वह इकलौता उजाला थी, जिस पर टिकी थीं उम्मीदों की आखिरी सांसे। सपने देखती मेरी इन आँखों में धूल झोंककर विजया अचानक मुझे छोड़कर फुर्र हो गई। उसका इस तरह से जाना मुझे अखर गया। माना कि हमने साथ-साथ जीवन का एक लंबा सफर तय किया था, बावजूद इसके मैं आज भी अपने आपको अतृप्त पाता हूँ। पीड़ा की इस घड़ी में किसी के सहानुभूति भरे शब्द सुकून दे जाते हैं। अभी कुछ दिन पहले मंजुषा सांडू (कर्वे) और नीलाक्षी पुरव (म्हात्रे) मिलने आई थीं और लगभग दो घंटे तक बातचीत करते हुए उन लोगों ने मेरा हाल समाचार लिया, बड़ा अच्छा लगा। विजया के साथ यूरोप, न्यूजीलैंड-ऑस्ट्रेलिया की यात्रा किए सात साल से अधिक समय हो गया है, मगर वो स्मृतियां, विजया के साथ गुजारे वो सुनहरे दिन आज भी मुझे उत्साहित करते हैं। जीवन साथी साथ हो तो बहुत बड़ी जिंदगी भी छोटी लगने लगती है। वास्तव में देखा जाए तो जिंदगी छोटी नहीं होती, लोग जीना ही देर से शुरू करते हैं। निराशा के क्षणों में अपनी सुखद स्मृतियों को याद करते हुए मैं अपनी पीड़ा को भूलाने की कोशिश करता हूँ।

श्रीमद्भगद्गीता के इस श्लोक के साथ -

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।'

तात्पर्य- आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, आत्मा को आग नहीं जला सकती, आत्मा को पानी नहीं भिगो सकता, आत्मा को हवा नहीं सुखा सकती। आत्मा केवल एक देह से दूसरे देह में जाती है। उसका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता है।

विजया ने भी सिर्फ मानवी देह त्यागा है, उसकी आत्मा किसी और रूप में यहीं कहीं मेरे आस-पास मौजूद है इसे मैं महसूस करता हूँ पर देख नहीं पाता हूँ।

आज जब सोचता हूँ कि श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर, बृहन्मुंबई जिला जिमनास्टिक एसोसिएशन, मलखांब और राज्य जिमनास्टिक संगठन की तकनीकी व्यवस्था तथा उनका वित्तीय लेखा-जोखा संभालना किसी एक व्यक्ति के बस की बात नहीं थी। इस काम में पत्नी विजया का सहयोग काफी उल्लेखनीय था। मन में नये-नये विचारों एवं कल्पनाओं की बौछारें तो होती थी, जिसकी पूर्ति के लिए अनेक सहयोगी हाथों की जरूरत थी। मसलन आज भी वही स्थिति है। उत्साह तो है मगर अब शारीरिक दुर्बलता आड़े आ रही है। मुझे याद आ रहा है कि मेरे सामाजिक कार्यों और स्पोर्ट्स गतिविधियों को लेकर घर से कभी कोई विरोध नहीं था, बल्कि समर्थन प्राप्त था। पिताजी स्वयं स्वतंत्रता सेनानी और क्रीड़ा प्रेमी थे इसलिए घर का माहौल भी उसी प्रकार का था। विजया के आने के बाद वह भी इन स्पोर्ट्स की गतिविधियों में घुल मिल गई और कंधे से कंधा लगाकर काम करने लगी। आज मेरे पास अपने कंधे तो है, पर विजया के कंधों की कमी महसूस हो रही है। वह एक ऐसा कंधा था, जिस पर सिर रखकर मैं अपनी सारी पीड़ाओं को भूल जाता था।

30

2036 में ओलंपिक का आयोजन भारत में

मीडिया में उपलब्ध सूचना के अनुसार सन् 2036 में ओलंपिक खेलों का आयोजन भारत में होने वाला है, जिसका आगाज भारत की ओर से हो चुका है। ओलंपिक अंतरराष्ट्रीय स्तर का एक प्रतिष्ठित खेल महोत्सव है, जिसमें कई तरह की खेल प्रतियोगिताऐं आयोजित की जाती हैं। इसका आयोजन हर चार साल बाद किसी ना किसी मेजबान राष्ट्र में होता है। सारी दुनिया के खेल प्रेमियों की नजरें इस महोत्सव पर टिकी होती हैं। जुबां पर ओलंपिक का नाम आते ही मेरी भुजाएं फड़फड़ाने लगती हैं और शरीर में एक अलग प्रकार की ऊर्जा संचारित होने लगती है। मन उमंग से भर जाता है और अंतर्मन राष्ट्रभावना से संचारित होने लगता है। मैं कभी ओलंपिक में सहभागी नहीं हो पाया, मगर मेरे देश के अधिक से अधिक युवा खिलाड़ी ओलंपिक रूपी नभ में ऊंची उड़ान भरते हुए अपने साथ, अपने देश का भी नाम रोशन करें, ये मेरी शुभकामनाएं मन में आकार ले रही हैं। आज हमारा देश हर क्षेत्र में परचम लहरा रहा है तो ओलंपिक में हम क्यों पीछे रहें? पदक तालिका में हम ऊपरी स्तर पर अपना स्थान क्यों नहीं बना सकते? प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर इंसान क्या नहीं कर सकता? हमारे देश में प्रतिभाओं की कमी नहीं है, मगर उन्हें योग्य समय पर सही मौका नहीं मिल पाता, ये हमारा दुर्भाग्य है। कहीं ना कहीं ये हमारी व्यवस्था की कमी है।

सन् 2036 में भारत ओलंपिंक की मेजबानी करेगा, यह सूचना मुझ जैसे कई खेल प्रेमियों के लिए गौरव और अभिमान की बात है, साथ ही

सामने चुनौतियां भी ताल ठोंक रही है। खेल का एक समर्पित कार्यकर्ता और पुजारी होने के नाते मुझमें इस महोत्सव को लेकर काफी उत्सुकता है। एशियाड और कॉमनवेल्थ गेम्स के बाद अब ओलंपिक खेल महोत्सव का आयोजन भारत में होने जा रहा है, यह बहुत बड़ी बात है। हम भारतीयों के लिए यह अभिमान की बात है। हमारे हौसलें बुलंद हैँ। इसे लेकर जो बातें मेरे जेहन में आ रही हैं, उसे मैं साझा करना चाहता हूँ। इसके पहले ओलंपिक में हमारे देश के खिलाड़ियों ने सहभागिता करते हुए कई पुरस्कार भी जीते हैं। अर्थात ये महोत्सव हमारे लिए नया नहीं है। अन्य विकसित देशों के मुकाबले, क्षमता होते हुए भी अब तक हमारा प्रदर्शन बहुत सराहनीय नहीं रहा है। यह चिंता का विषय जरूर है, मगर अभी भी मौके बहुत हैं। भविष्य के अवसरों को देखते हुए हमें अपनी स्थिति में सुधार लाना होगा। वो कहते हैं ना -

'जब हौसला बना लिया ऊंची उड़ान का
फिर देखना फिजूल है कद आसमान का।'

इस बार हमें अपना बेस्ट परफ़ॉर्मंस देना होगा। मौका भी है, दस्तूर भी है और अभी समय भी काफी है। इसकी सफलता को भारतीय खिलड़ियों के श्रेष्ठ प्रदर्शन तथा पदकों की संख्या से आंकी जानी चाहिए। देखा जाए तो ओलंपिक का इतिहास बहुत पुराना है। 1896 से इसका आयोजन किया जा रहा है। विकिपीडिया के अनुसार प्राचीन ओलंपिक खेलों का आयोजन पहली बार 1200 साल पूर्व योद्धा खिलाड़ियों के बीच हुआ था। शुरुआती दौर में बॉक्सिंग, रनिंग, कुश्ती और रथों की दौड़ जैसे खेल प्रतियोगिता में शामिल थे। प्रारंभ में सेना (आर्मी) के जवान बड़ी संख्या में इसमें प्रतिभागिता करते थे, क्योंकि खेलों को आर्मी प्रशिक्षण एवं फिटनेस का एक हिस्सा माना जाता रहा है। पुरातन समय में यूरोपियन देशों में विशेषतः ग्रीक एवं रोम में सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार करने तथा फिटनेस बनाए रखने के लिए उनसे जिमनास्टिक का खेलों का अभ्यास करवाते थे। इनमें बीम, बार्स, जंप रेस आदि का समावेश होता था। उपलब्ध जानकारी के अनुसार

पहले ओलंपिक खेल महोत्सव का आयोजन 1896 में यूनान की राजधानी एथेंस के ओलंपिया में हुआ था, इसलिए इसका नाम ओलंपिक पड़ा। इसकी लोकप्रियता का अंदाज इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रारम्भिक दौर में जब ओलंपिक खेलों का आयोजन होता था, तब तत्कालीन शहरों और राज्यों के बीच आपस में जो लड़ाई होती थीं, वो खेल महोत्सवों के दौरान कुछ दिनों तक स्थगित कर दी जाती थीं। उस दौर में छोटे–छोटे राज्यों, शहरों और देशों के बीच आपस में युद्ध हुआ करते थे, इतिहास इस बात का गवाह है। तब मौसम के अनुसार ये प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं, जैसे ग्रीष्मकालीन, शीतकालीन, पॅरालंपिक खेल और यूथ ओलंपिक महोत्सव। धीरे–धीरे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी ओलंपिक की लोकप्रिता बढ़ती गई। इसमें सहभागी होना राष्ट्रों एवं खिलाड़ियों के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बनता गया। अब तो इसमें सहभागी होने और पुरस्कार जीतने के लिए खिलाड़ी एड़ीं चोटी का जोर लगाते हैं। समय-समय पर ओलंपिक खेलों के नियम भी बदलते रहे हैं। नई नीति के अनुसार इसका आयोजन हर चार साल (लीप ईयर) बाद अलग-अलग देशों में किया जाता है। जिस देश मे इसका आयोजन होता है वह मेजबान देश कहलाता है। एकदम प्रोफेशनल रूप से आयोजित होने वाले इस अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता में दुनिया भर के हजारों खिलाड़ी सहभागी होते हैं। दुनियाभर के खेल प्रेमियों और खिलाड़ियों की नजरें इस महोत्सव पर टिकी होती हैं।

सन् 1896 में जब पहली बार ओलंपिक खेलों का आयोजन एथेंस पर्वत पर किया गया तब उसमें सिर्फ पाँच खेलों का समावेश था। (विकिपीडिया के अनुसार) उसके बाद खेलों की संख्या बढ़ती गई, जो निम्न प्रकार से है -

1) वर्ष 2012 में 26 खेल
2) वर्ष 2016 में 28 खेल
3) वर्ष 2021 में 33 खेल
4) और 2024 में 32 खेलों का समावेश था।

विकिपीडिया के अनुसार ओलंपिक में जिम्नास्टिकों के लिए निर्धारित आयु पहले 16 वर्ष की थी, जो समयानुसार बदलती रही। वर्ष 1981 में औसत आयु सीमा 14 से 15 वर्ष के बीच रही, तो 1997 में फिर 16 वर्ष रही। सन 1994 में जिमनास्टों की आयु का औसत 16.49 रहा। 2005 में आयु का औसत 18.10 वर्ष था। सन् 2016 में तैराकी प्रतियोगिता में सबसे कम उम्र की खिलाड़ी 13 वर्ष की थी, जो नेपाल से थी और अधिकतम आयु के खिलाड़ी की उम्र 61 वर्ष थी, जो ऑस्ट्रेलिया से था। सन् 2020 में औसत आयु सीमा 15 वर्ष निर्धारित की गई थी। इस तरह से अन्य खेलों में भी उम्र का डाटा विकिपीडिया पर उपलब्ध है। औसत आयु सीमा का जिक्र यहां इसलिए किया गया है ताकि हम यह जान सके कि ओलंपिक में एक खिलाड़ी की उम्र क्या होनी चाहिए? कभी-कभी तो आयु सीमा 8 वर्ष भी निर्धारित रही है तो, कभी औसत आयु 6.8 से 10 वर्ष के बीच देखी गई है। ऑस्ट्रेलियाई प्रणाली में 8 वर्ष की आयु निर्धारित की गई है। FIG का चार्ट जिमनास्टिक के लिए औसत आयु 6 से 18 वर्ष दर्शाता है। जिमनास्टिक को वैश्विक स्तर पर Mother of all Games माना जाता है। मगर मेरी दृष्टि में जिमनास्टिक के साथ आसन को भी खेलों का बेस माना चाहिए। आज तक के ओलंपिक प्रतियोगितों में भारत की क्या स्थिति रही है? इसके बारे में सारी जानकारियां गूगल पर उपलब्ध हैं। इसलिए आंकड़ों के विषय में अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। मगर हाल की उपलब्धियों पर भाष्य करना जरूरी लगता है।

'पेरिस मे आयोजित 2024 के ओलंपिक' में भारत ने सिर्फ 6 पदक जीते और पदक तालिका में 71 वें स्थान पर रहा। वहीं 2020 टोक्यो ओलंपिक में भारत ने 7 पदक जीते थे और 48 वें स्थान पर रहा था। ओलंपिक में भारत का यह सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था। अब चिंतन का विषय यहां यह है कि इतनी बड़ी जनसंख्या वाला देश भारत ओलंपिक पदक तालिका में इतना पीछे क्यों है? क्या हमारे देश में प्रतिभावान खिलाड़ियों की कमी है? या हम उन तक पहुँच ही नहीं पा रहे हैं? इस विषय पर मंथन करने की

जरूरत है। "श्री पवनपुत्र" के माध्यम से हम पिछले कई वर्षों से "ओलंपिक" खेल के बारे में सोचते आ रहे हैं। सन् 2000 में नारा भी दिया था - "In what manner are we less compared to other nations so that we cannot get a medal in Olympic." अर्थात "हम अन्य देशों की तुलना में

किस तरह से कमतर हैं कि ओलंपिक में अपेक्षित पदक नहीं जीत सकते"। यह 1960 और 70 के दशक में भी सच था और आज भी सच है....। कोई खिलाड़ी जब ओलंपिक में पदक जीतता है तो प्रगत राष्ट्रों में उसका काफी सम्मान किया जाता है। केनिया जैसे देश के खिलाड़ी मॅराथान में हमेशा अपना वर्चस्व कायम रखने में सफल होते हैं मगर हमारे खिलाड़ी कहां होते हैं ? यह बहुत ही विस्तृत विषय है इसलिए इसे यहीं पर विराम देते हैं।

तैराकी को लेकर मुझे एक घटना याद आ रही है। बरसों पहले पुणे में एक अनोखा प्रयोग किया गया था। एक बच्चे का जन्म होते ही उसे पानी में छोड़कर देखा गया, इस तर्क के साथ कि मां के गर्भ में बच्चा पानी में ही रहता है। यहां तक कि 6 महीने के बच्चे को जिमनास्टिक का बेसिक प्रशिक्षण देने का प्रयोग किया गया। बाद में ऐसा ही प्रयोग 10 महीने के बच्चे के साथ भी किया गया। वैसे किस उम्र से बच्चों को खेलों का प्रशिक्षण दिया जाए, इसका कोई खास नियम नहीं है, मगर इसे लेकर कई तरह के प्रयोग भारत में किए गए हैं। आयु को लेकर इस तरह के प्रयोग विदेशों में आम बात है। आम तौर पर हम प्रकृति विज्ञान को समझने का प्रयास अभी भी नहीं कर रहे हैं, किन्तु विज्ञान निष्ठ पाश्चमात्यों ने समुद्री पशु–पक्षियों जीवन पर शोध करते हुए इस शास्त्र को विकसित किया है। व्यापक तौर पर बात करें तो जितना ध्यान हम बुलेट ट्रेन, लड़ाकू जहाज, मिसाइल्स, अंतरिक्ष आदि पर केंद्रित करते हैं, उसकी तुलना में स्पोर्ट्स पर कितना फोकस किया जाता है ? मतलब स्पोर्ट्स को हमारे देश में वो दर्जा नहीं प्राप्त है, जो विकसित या अन्य देशों में प्राप्त है। मनुष्य नामक प्राणी की ताकद, बुद्धिमत्ता या उसकी क्षमता पर आधारित विज्ञान शास्त्र का अध्ययन और

उसे विकसित करने की जरूरत पर हमें जोर देना होगा। क्या इस दिशा में हम सार्थक प्रयास कर रहे हैं ? एक खिलाड़ी एवं कोच होने के नाते ऐसे कई प्रश्न मेरे दिमाग में उठते रहते हैं।

सर्कस में हमने देखा होगा कि घोड़े के साथ दौड़ने वाला घुड़सवार पहले घोड़े की पीठ पर रखे जीन को पकड़ता है और फिर कूदकर उस पर बैठ जाता है। ऐसे ही दौड़ते हुए घोड़े से कूदकर वह नीचे उतर जाता है। इस तरह घोड़े के साथ दौड़ते हुए वह कई तरह के करतब दिखलाता है। इसके लिए उसे अपने शरीर को हल्का-फुल्का रखना पड़ता है। ठीक इसी तरह एथलीट को भी अपने शरीर को बहुत हल्का और फ्लेक्जीबल रखना पड़ता है। हमारे दादाजी अपने जमाने में रेस के घोड़ों पर जॉकी का अभ्यास करते थे, जिसमें घोड़े के वजन के साथ-साथ जॉकी के वजन का भी महत्व होता है। यह बात पिताजी ने एक बार चर्चा के दौरान मुझे बताई थी। मतलब गति और वजन के साथ किया गया अभ्यास सफलता दिलाता है।

कुछ वर्ष पहले तक sports in ussr की मासिक पत्रिका नियमित रूप से रशियन कॉउन्सलेट से पवनपुत्र में आती थी। उसके एक अंक में लिखा था कि शास्त्रों के अनुसार मानवों को पहले बंदरों की तरह पूंछ हुआ करती थी। मानवों ने पूंछ का प्रयोग करना छोड़ दिया तो, कालानुरूप उसके शरीर से पूंछ गायब हो गई। इसी तरह यदि हम अपने शरीर के सभी अंगों का पूरा प्रयोग नहीं करेंगे तो संभव है कि कुछ शताब्दियों के बाद हमारे हाथ, पैर हम गंवा बैठेगें। इसलिए शरीर के सभी अवयवों का समुचित उपयोग किया जाना चाहिए। आज कॉम्प्यूटर, मोबाइल, लॅपटॉप जैसे कई आधुनिक यंत्र आ गए हैं, जिससे हमने कुछ अंगों का यथोचित प्रयोग कम कर दिया है। आगे और भी विकसित यंत्र आएंगे तो क्या होगा? हम अपने अंगों का प्रयोग और भी कम कर देंगे। इसकी कल्पना करके देखें। आज के समय में आधुनिक तकनीकी यंत्रों के अधिक प्रयोग से बड़ों के साथ-साथ बच्चों को भी कई तरह की बिमारियां होने लगी हैं, जो भविष्य में मानवी जीवन के लिए खतरे के संकेत हैं। यहां मेरा संकेत स्पोर्ट्स की ओर है,

मतलब सभी को अपने जीवन में खेलों को थोड़ा बहुत स्थान देना चाहिए।

जब मैं कॉलेज में पढ़ रहा था, तब मुंबई के धोबीतलव के मेट्रो में कुछ फिल्में देखीं थी। जिनमें से एक फिल्म में तीन दिमागों को एक आवरण के नीचे ढंका हुआ दिखाया गया था। वे नेट की मदद से दुनिया को नियंत्रित कर रहे थे। इसी तरह 'गलिगन्स ट्रैवल' फिल्म में, इंसान को पूरी तरह से यांत्रिक उपकरणों के अधीन दिखाया गया था। एक दृश्य में वृद्धों को सीधे स्वर्ग जाते हुए दिखाया गया था, मगर वास्तविक स्थिति यह थी कि उन्हें मार दिया जाता था। ऐसी ही एक फिल्म में इंसानों की पहचान नाम की बजाय उनके नंबर से किए जाते हुए दिखाया गया था। जैसे आजकल मोबाइल नंबर, आधार कार्ड नंबर और पैन कार्ड नंबर इंसान के पहचान (आईडेंटी) के द्योतक बन गए हैं। संभव है कि शताब्दियों बाद इंसान की आईडेन्टी किसी कोड नंबर से हो। मतलब इन फिल्मों में बुद्धि और मस्तिष्क के प्रयोग को बहुत बारीकी से दिखाया गया था। एक जानकारी के अनुसार अमेरिका में मस्तिष्क के अनुसंधान पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है।

एक संशोधन के अनुसार इंसानी मस्तिष्क का विकास 4 से 5 वर्ष की आयु तक तेजी से होता है। साथ ही आंखों से दूरी देखने की क्षमता 8 वें वर्ष तक पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाती है। इसीलिए वॉल्टिंग हार्स नामक खेल उपकरण का पहले वाला आकार बदलकर अब उसे आगे की ओर से अधिक गोलाकार टेबल की तरह कर दिया गया है। विकसित देशों में खिलाड़ियों को उच्च मानकों की कसौटी से गुजरना पड़ता है। क्या हमारे यहां खेलों के लिए ऐसे मानक स्थापित किए जा सकते हैं? जैसे हर इंसान के चेहरे की बनावट और अंगूठे के निशान भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी तरह हर इंसान के विचार और आकलन की क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है। जिमनास्टिक के कोड ऑफ पॉइंट्स में 'सोल' शब्द का प्रयोग प्रेजेंटेशन के रूप में किया जाता है। इसके गहन अर्थ पर हमें गौर करना होगा। मानव मस्तिष्क विकास क्रम और बौद्धिक संपदा पर अमेरिकी संशोधन के सदियों पहले भारत में इस तरह का अध्ययन सदियों पहले हो चुका है, ऐसा

हमारा शास्त्र कहता है। मगर हमने इसका सही समय पर संज्ञान नहीं लिया। अर्थात हमें अपनी पुरातन संस्कृति एवं उपलब्धियों पर गहन चिंतन करने की आवश्यकता है। उस इतिहास को अद्यतन करते हुए नए सिरे से फिर उसे दुनिया के सामने प्रस्तुत करना होगा।

31

किस उम्र से, बच्चों को जोड़ा जाए खेल से

बच्चों को किस उम्र से खेल से जोड़ा जाना चाहिए, इसका कोई खास नियम नहीं है। इस दिशा में कई तरह के प्रयोग देश-विदेश में लोग करते रहे हैं। इसका जिक्र ऊपर किया है। सामान्यतः खेल की दृष्टि से 0 से 3 वर्ष की आयु के बच्चों को टोडलर (Toddler) कहा जाता है। दो साल की उम्र तक बच्चे खड़े होकर चलना शुरू कर देते हैं। इसके बाद 4 वर्ष की आयु तक बच्चे किड्स की श्रेणी में आ जाते हैं। 4 से 6 या 8 से 10 आयु के बच्चों के लिए Kids Equipments का प्रयोग उचित माना गया है। इसके सहारे कई प्रकार के व्यायाम किए जाते हैं। लड़कियों के लिए विशेषतः बीम और कमर से सिर की ऊंचाई का अनइवन बार्स, रोमन रिंग्स और पॅरलल बार्स इत्यादि का प्रयोग एक्सरसाइज के लिए उपयुक्त माना जाता है। मुख्य रूप से ओलंपिक खेलों के लिए (स्कोरिंग के लिए) लड़कों के लिए 6 खेल प्रकार और लड़कियों के लिए 4 खेल प्रकार मुख्य रूप से होते हैं। इससे सम्बंधित उपकरण होते हैं जिनके सहारे शारीरिक कसरत का प्रदर्शन करना होता है। इसे हम बचपन में खेले गए पांगुल गाड़ी (तीन पहियों वाली लकड़ी की गाड़ी) के उदाहरण से समझ सकते है। पांगुल गाड़ी में लकड़ी के तीन फ्रेम में तीन छोटे-छोटे पहिए लगे होते हैं। उसे ढकेलते हुए बच्चा चलने की कोशिश करता है। आजकल गोल-गोल घूमने वाली छोटी गाड़ी (साइकिल) आ गई है, जिसमें बैठकर बच्चा अपने पैरों के सहारे गाड़ी को आगे पीछे करता है। मतलब छोटे बच्चे खेल-खेल में इन गाड़ियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से एक्सरसाइज करते हैं। यही प्रयोजन किड्स

Equipments का भी है, जिसमें अधिकतम सुरक्षा प्रदान करने के लिए फोम रबर का उपयोग किया जाता है।

एक और बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, बच्चा जब चलना शुरू करता है, तो मधुर आवाज करने वाले या जगमगाते छोटे लाइट वाले छोटे जूते उसे पहनाएं जाते हैं। चलते समय जूते से निकलने वाली मधुर आवाज या लाइट के साथ बच्चा खुशी-खुशी चलने की कोशिश करता है। इसी तरह बच्चों के लिए अच्छे-अच्छे कपड़े माता-पिता फैशन के अनुसार ले आते हैं। जब कपड़े छोटे हो जाते हैं या टाइट होने लगते हैं तो हम नए कपड़े लाते हैं। इस तरह नए कपड़े खरीदकर हम बच्चों को और खुद को संतुष्ट करते रहते हैं। यही बात टॉडलर तथा Kids equipments के लिए भी लागू होती है। इसीलिए मैं इसे (मराठी भाषा में) पांगुळ गाड़ी कहता हूँ। ये सभी उदाहरण टॉडलर तथा Kids equipments को समझने और बच्चों के लिए इसकी उपयोगिता की दृष्टि से मैंने दिए है।

इस संकल्पना को अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ और उदाहरण देखते हैं। बच्चा जब 3-4 साल का हो जाता है, तब हम उसे तीन पहियों वाली छोटी साइकिल चलाने के लिए देते हैं। बच्चा कुछ और बड़ा हो जाता है तो उसे पुशकार्ट साइकिल देते हैं, जो तीन पहियों वाली होती है और खड़े होकर बच्चे उसे चलाते हैं। एक पैर साइकिल पर रखकर दूसरे पैर से जमीन पर पुश करते हुए साइकिल आगे बढ़ाई जाती है। दोनों हाथों में हँडिल होता है, जिसके सहारे बच्चे साइकिल को दिशा देते हैं। बच्चा जब कुछ और बड़ा हो जाता है, तो दो पहियों वाली साइकिल देते हैं, जिस पर संतुलन बनाने का अभ्यास करते हुए वह पाइंडिल मारकर वह आगे बढ़ता है। विविध उम्र के बच्चों के लिए विविध ऊंचाई की दो पहिए वाली साइकिलें बाजार में विक्री के लिए उपलब्ध हैं। घरवालों की मदद से बच्चे इसे चलाना सीख जाते हैं। देखा जाए तो ये सभी व्यायाम के ही प्रकार हैं। इससे बच्चों के व्यायाम के लिए उम्र का अंदाजा लगाया जा सकता है। अर्थात खेल-खेल में ही व्यायाम हो जाता है।

बच्चों के भीतर छिपे सुप्त कला–गुणों को पहचानना और उन्हें योग्य समय पर यथोचित अवसर प्रदान करना हम अभिभावकों और शिक्षकों का काम होता है। बच्चों के आंतरिक गुण बचपन से ही परिलक्षित होने लगते हैं। सही समय पर उसे परखने की जरूरत होती है। पवनपुत्र के माध्यम से जिम्नस्टिक्स और मलखांब के कई हजार विद्यार्थी हमने समाज को दिए, जो तेजोमय दीप बनकर अलग-अलग तरह से समाज को अपना प्रकाश प्रदान कर रहे हैं, यही हमारी तपस्या का फलित है। इनमें से सैकड़ों खिलाड़ियों ने अपना, अपनी संस्था का, राज्य और देश का नाम रोशन किया और आज वे समाज को बलोपासना का ज्ञानदान दे रहे हैं। ये हमारी संतुष्टि और समाधान का विषय है।

आसन, मलखांब, एथलिटिक्स, स्ट्रेंथ बिल्डिंग गेम्स, वेट लिफ्टिंग तथा इससे संबंधित अन्य कई प्रकार के व्यायाम एवं खेल उम्र के अनुसार बच्चों को सिखाया जाना चाहिए। कुछ खेल ऐसे हैं जिनका प्रशिक्षण नर्सरी की उम्र से ही दिया जाना चाहिए। इसके लिए ऑस्ट्रेलियन चार्ट, एफआईजी चार्ट, किड्स प्रोग्राम आदि का संदर्भ लिया जा सकता है। सामान्यतः 6-7 साल की उम्र तक बच्चे अपने अभिभावकों के निर्णय पर निर्भर होते हैं। यह माता-पिता की रुचि और उनकी विचार क्षमता पर निर्भर करता है। कई माता-पिता तो अपने बचपन के अधूरे सपनों को बच्चों के माध्यम से साकार करने की कोशिश करते हैं। इसमें कोई बुराई नहीं है मगर इस प्रक्रिया में बच्चों की रुचि का विशेष ख्याल रखा जाना चाहिए।

जैसे कि पहले हमने चर्चा की है कि बच्चों और अभिभावकों तक जिम्नास्टिक्स एवं अन्य क्रीड़ा प्रकारों की विस्तृत जानकारी विविध माध्यमों से पहुंचनी चाहिए। इसकी शुरुआत श्रीपवनपुत्र के पूर्व खिलाड़ियों ने कुछ वर्ष पहले की थी। ऋषिकेश और अपर्णा ने कड़ी मेहनत करते हुए बच्चों के खेल उपकरणों (Kids equipments) की एक दिवसीय प्रदर्शनी का आयोजन चेंबूर और घाटकोपर में किया था। यह पवनपुत्र की हमारी 'बी' टीम थी। इसकी सफलता के बाद अन्य जगहों पर भी इस तरह के आयोजन कुछ संस्थाओं द्वारा किए गए। इसमें ट्रैकिंग सहित टीम गेम और व्यक्तिगत

गेम आदि विषयों की जानकारी का समावेश किया गया था। इसे अभिभावकों का बहुत अच्छा रेसपॉन्स मिला। इस तरह के प्रयोग एवं प्रदर्शनियों का आयोजन कुछ अंतराल के बाद लगातार किया जाना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है। व्यायाम या खेल के कुछ प्रकार ऐसे हैं, जिसे सिखाने से पहले बच्चे की रुचि, आकलन शक्ति तथा शारीरिक क्षमता को पहचानना आवश्यक होता है। जैसे स्कूल में बच्चों को सबसे पहले वर्णमाला के अक्षरों से परिचय कराया जाता है। उसके बाद शब्द बनाना, फिर वाक्य बनाना आदि सिखाया जाता है। जब बच्चे प्राथमिक शिक्षा में निपुण हो जाते हैं, तो उन्हें विभिन्न विषयों के आकलन के लिए विज्ञान, गणित, भाषा, नागरिक शास्त्र के साथ-साथ कला, संगीत, कॉमर्स आदि विषय भी पढ़ाए जाते हैं। इसी तरह के प्रयोग क्रीड़ा प्रकारों में भी किए जाते हैं। कोई भी प्रशिक्षण देने से पहले बच्चों की रुचि, उनकी आकलन शक्ति, उनकी खूबियों को पहचानना बेहद आवश्यक होता है। ऐसा नहीं होना चाहिए हम बच्चों की इच्छा के विपरीत उन पर खेल या व्यायाम को थोप रहे हैं। इसके लिए पहले सबसे पहले हमें क्रीड़ा कार्यकर्ताओं की मनोविश्लेषकों की टीम बनानी होगी। खेल एक शास्त्र है, इस शास्त्र का गहन अध्ययन करने वालों की टीम पर हमें फोकस करना होगा। एकेडमिक शिक्षा में खेल जैसे विषयों का समावेश किया जाना चाहिए। इसका एक सर्वसमावेशक पाठ्यक्रम (सिलॅबस) बनाया जाना चाहिए। स्वास्थ एवं फिटनेस की दृष्टि से जीवन में खेलों का बहुत महत्व होता है, इसे हम सभी जानते हैं। सुविधाओं और पूरी जानकारी के अभाव में कई लोग खेलों से एवं उससे मिलने वाली सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। इसके बारे में पूरी तरह से जन जागृति या प्रबोधन ना तो सरकार करती है, ना ही खेल से संबंधित संस्थाएं। मीडिया तो सिर्फ क्रिकेट के पीछे भागती है। मतलब क्रिकेट को छोड़ दिया जाए तो अन्य खेलों के प्रति प्रेरणा, जनजागृति एवं उचित जानकारी का हमारे यहां अभाव है।

खेल के प्रति लोगों की मानसिकता

खिलाड़ी का मतलब- खेल खेलनेवाले, या खेल सिखानेवाले लोग। खेल को हमारे देश में मौज-मजा या मस्ती का उपक्रम माना जाता है। लोग खेलों को हल्के में लेते हैं, जबकि यह एक शास्त्र है, एक विद्या है। नामचीन एवं कुशल खिलाड़ी बनने के लिए लंबे समय तक कठोर तपस्या की जरूरत होती है। क्रिकेट के दर्शकों की संख्या करोड़ों में होती है। कोई शृंखला जीतने पर क्रिकेट के खिलाड़ियों का जिस गर्मजोशी और माँ-सम्मान के साथ उनका स्वागत किया जाता है, मानों कोई युद्ध जीतकर आए हों। जबकि क्रिकेट विश्व के चुनिंदा देशों में ही खेला जाता है। इसकी तुलना में अन्य खेलों की क्या स्थिति है ? अन्य खेलों में पदक जीतने वाले कितने खिलाड़ियों को लोग जानते हैं ? हमारे यहां खेलों के प्रति लोगों की मानसिकता और सामाजिक चेतना जागने में अभी काफी समय लगेगा। इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं। शहरों की व्यस्त जिंदगी, शिक्षा (Education) का तनाव, रोजमर्रा की भाग-दौड़, रोजी–रोटी का मसला, अन्य साधन सुविधाएं आदि के चलते लोगों की यह धारणा बनते जा रही है कि जीवन में पैसा ही सब कुछ है। इसलिए येन- केन प्रकारेण लोग अधिक से अधिक पैसा कमाने के पीछे भागते हैं, और उसी सम्बंधित कॅरियर का चुनाव करते हैं। बहुत हद तक यह सही भी है। मगर ये भी सच है कि पैसा जीवन में बहुत कुछ हो सकता मगर सब कुछ नहीं हो सकता। आज चारों ओर आधुनिक जिम और क्लब आदि का जाल बिछता जा रहा है, क्योंकि

लोगों को आधुनिक सुविधाएं चाहिए। यदि अच्छी सुविधाएं मिल रही हैं, तो लोग उसके औने-पौने दाम देने को तैयार हैं। इसके चलते पुरानी व्यायामशालाओं, खुले मैदान में एक्सरसाइज करना, आखाड़ों की संकल्पना आदि को लोग भूलते जा रहे हैं, जो की मूल भारतीय खेल संस्कृति है। जिनके पास धन है, वे इन आधुनिक सुविधाओं का लाभ लेने में सक्षम हैं। मगर उन सामान्य लोगों और गरीबों का क्या होगा ? गांव कस्बों में रहने वाले खेल प्रतिभाओं का क्या होगा ? हर चार वर्ष बाद आने वाले ओलंपिक खेलों में पदक प्राप्त करने वाले खिलाड़ियों का सम्मान प्रगत राष्ट्रों में युद्ध जीतकर आए योद्धा की तरह होता है। ऐसे राष्ट्र दो साल पहले से ही खेल और खिलाड़ियों की तैयारी में लग जाते हैं। हमारे देश में क्या स्थिति है? अब्दुल कलाम द्वारा किया गया अणु विकास, जयंत नारळीकर द्वारा किया गया संशोधन, माशेळकर और गोवारीकर जी का बुद्धि वैभव, विज्ञान आदि का समुचित उपयोग हम भारतीय करेंगे या नहीं ? क्या इसका उपयोग बलोपासना के लिए महीन किया जा सकता? ऐसा प्रश्न मन में उपस्थित होता है। इस बारे में सोचने के लिए आज किसी के पास समय नहीं है, या फिर लोग इस बारे में सोचना ही नहीं चाहते। आज रफ़्तारभरी इस तेज जिंदगी में जिम और क्लब एक प्रकार से अमीरों के स्टेट्स सिंबल तथा फॅशन के परिचायक बनते जा रहे है। संभ्रांत इलाकों में यह व्यवसाय खूब फल फूल रहा है। महानगरों से होते हुए अब छोटे शहरों में भी इनका चलन बढ़ने लगा है। कुल मिलाकर देखा जाए तो इसका परिणाम खेलों की गुणवत्ता पर पड़ने लगा है। इस दिशा में गंभीरता से गौर करने की जरूरत है।

हमारे यहां कुछ बच्चे छोटी उम्र से खेलों में रुचि लेने लगते हैं, मगर बढ़ती उम्र के साथ उन्हें पढ़ाई और करियर की चिंता सताने लगती है और आगे चलकर अधिकांश बच्चे कुछ सालों बाद खेलों को त्याग देते हैं। हमारे यहां यह दृढ़ मान्यता है कि खेल रोजी-रोटी के साधन नहीं हो सकते, वहीं दूसरी ओर क्रिकेट जैसे खेल के पीछे लोग आँखें मूंदकर भागते नजर आ रहे हैं। क्योंकि क्रिकेट में नेम, फ़ेम के साथ धन भी है। इसके लिए बहुत बड़ी संख्या में श्रोता मिल रहे हैं, प्रायोजक मिल रहे हैं, मीडिया भी उनके

पीछे-पीछे भागती नजर आती है। वहीं एथलेटिक्स, जिमनास्टिक, मलखांब, कबड्डी, खो-खो के साथ क्यों ऐसा नहीं होता ? ये हम सबके लिए, हमारी सरकारी व्यवस्था के लिए चिंता और चिंतन का विषय है। इस विषय पर काफी ऊहापोह पहले हो चुका है, इसलिए और ज्यादा लिखना यहां उचित नहीं होगा। खेल में वही खिलाड़ी आगे बढ़ते हैं, जिनकी विशेष पहचान बन जाती है, या उनकी रोजी-रोटी खेल से चलने लगती है। शेष गुमनामी के अंधेरे में कहीं गुम हो जाते हैं। समय के रहते हमें इस सोच को बदलना होगा और विकसित देशों की तरह हमारे देश में भी सरकारी स्तर पर खेलों को विशेष महत्व देना होगा। 'खेलो इंडिया' के माध्यम से इसका आगाज जरूर हुआ है, मगर अभी भी इस पर गहराई से काम करना बाकी है। बरसात के मौसम में मेढक जिस तरह से टर्र-टर्र करके साल भर लुप्त हो जाते हैं, उसी तरह सरकारी योजनाएं भी हैं जो चुनावी मौसम में जागती है। मुझे लगता है की इसके लिए आई.आई.टी., सैनिकी विद्यालयों जैसी संस्थाओं की मदद ली जानी चाहिए।

जीवन में खेलों का अनन्य महत्व है। खेल जीवन में एक आनंददायी घटना का प्रतीक है। इसे जीवन में प्रमुखता से स्थान दिया जाना चाहिए। बॉडी फिटनेस के लिए यह एक आवश्यक घटक है। मगर इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से दो प्रमुख घटक काम करते हैं, एक माता-पिता और दूसरा खेल संगठन (कोच/एसोसिएशन/फेडरेशन आदि)। अभिभावकों की रुचि बच्चों के खेल प्रदर्शन तथा उन्हें प्राप्त मेडल्स में अधिक होती है। इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में उनके बच्चों को अवसर मिले, इस पर भी ध्यान अधिक होता है। जबकि कोच, संगठन आदि की रुचि वित्तीय लाभ और मीडिया में लोकप्रियता की ओर होती है। वहीं सरकारी अधिकारियों की रुचि मंत्रियों एवं नेताओं को खुश करने में होती है। इस प्रक्रिया में कहीं ना कहीं खेल प्रभावित होता है, इसे लोग भूल जाते हैं। तमाम प्रक्षिणार्थियों में से बहुत कम विद्यार्थी होते हैं, जो एक सफल खिलाड़ी के रूप में उभरकर सामने आते हैं। अंत में विजेता के रूप में सिर्फ तीन खिलाड़ियों को ही स्वर्ण, रजत तथा कांस्य पदक देकर सम्मानित किया

जाता है। इसका मतलब ये तो नहीं होता है कि जिन्हें पुरस्कार नहीं मिला वे खिलाड़ी नहीं थे, या उनका दर्जा स्तरहीन था। जिन खलाड़ियों को प्रतियोगिताओं में सफलता नहीं मिलती उनमें से अधिकांश लोग हताश होकर खेल बीच में ही छोड़ देते हैं। इस निराशा से बचने के लिए हमारे पास क्या व्यवस्था है ? यहीं पर खेल कार्यकर्ताओं की मुख्य भूमिका शुरू होती है, जिसकी कमी लगातार महसूस की जा रही है। जिस तरह से जूडो, कराटे में ब्लॅक बेल्ट तक पहुँचने के कई स्टेप्स होते हैं, उसी तरह जिमनास्टिक में भी स्टेप्स (लेवल ट्रेनिंग) होने चाहिए, ताकि खिलाड़ी निराश ना हो। एक पत्रकार मित्र ने बताया था कि अमेरिका में खिलाड़ियों की जिम्मेदारी और उनका दायित्व बड़ी–बड़ी कम्पनियां उठाती हैं। हमारे यहां भी ऐसी व्यवस्था व्यापक स्तर पर होनी चाहिए।

भारत में अधिकांश कोच एवं माता-पिता आज भी इस बात से अनभिज्ञ हैं कि बच्चों को किस उम्र से एथलेटिक्स, जिमनास्टिक, आसन और मलखांब की कोचिंग दी जानी चाहिए। जो बच्चे पढ़ाई में कमजोर होते हैं, या जिनका पढ़ाई में मन नहीं लगता, उन्हें खेलों की ओर रुख करना चाहिए। खेल के क्षेत्र में भी करियर बनाया जा सकता है। अपने आस-पास ऐसे कई उदाहरण देखने को मिल जाएंगे, जिनको नौकरियां खेल की उपलब्धियों के कारण हासिल हुई हैं। आज कल तो सरकारी एवं कुछ निजी सेक्टर की नौकरियों में भी खिलाड़ियों के लिए विशेष स्पोर्ट्स कोटा होता है। नए दौर के माता-पिता अपने बच्चे के करियर प्रति बड़े जागरूक होते हैं, जो नई पीढ़ी के लिए अच्छे संकेत हैं। कई अभिभावक अपने बच्चों को खेलों में भेजने के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं की चीन, अमेरिका, स्पेन, जापान, कोरिया जैसे राष्ट्रों में खिलाड़ियों का क्या वजूद है। खेद इस बात का है कि जो तकनीक एवं उपकरण वहां अपनाई जाती है, उसका हमारे यहां नितांत अभाव है। कई राष्ट्रों में साधारणतः 3 वर्ष की आयु से ही बच्चे हाथ, पैर का उपयोग करते हुए कार्टव्हील, बॅकवॉक ओवर जैसे आसान खेल प्रकार करना सीख जाते हैं और फिर प्रतियोगिताओं की ओर रूख करते हैं। लेकिन हमारे यहां इतनी संस्थाएं नहीं हैं, ना ही उतने स्पोर्ट्स

कार्यकर्ता हैं, जो इनके बारे में विस्तृत जानकारी दे सकें।

एक सामान्य खिलाड़ी की शारीरिक क्षमता को देखते हुए वह उम्र के 20 से 30 वर्षों तक ही बेहतर प्रदर्शन कर पाता है। उसके बाद क्या ? यह हमारी समस्या है। हॉकी, फुटबॉल, मलखांब, कुश्ती, तीरंदाजी, भाला फेंक जैसे खेलों का उगम हमारे देश में ही हुआ है। बावजूद इसके अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इन खेलों में हम आज कहां हैं ? इसके कारण क्या हैं ? यह चिंतन का विषय है। ओलंपिक खेल महोत्सव यूरोपीय देशों से दुनिया भर में प्रसारित हुआ। उसके पीछे कई तरह की विचारधाराएं थीं। लेकिन उसकी भी प्रसिद्धि, प्रचार-प्रसार आदि सिर्फ प्रतियोगिताओं तक सीमित होती है। प्रतियोगिता तो तब होगी जब खिलाड़ी होंगे। तो वैश्विक स्तर पर खिलाड़ी तैयार करने की दृष्टि से ओलंपिक संस्था में क्या योजनाएं हैं ? मानव हित में क्या उन्हें ये काम नहीं करना चाहिए ? दुनिया के उभरते खिलाड़ियों को प्रशिक्षित करके खेल जगत में एक नई क्रांति नहीं लाई जा सकती क्या ? इस पर सबको विचार करना चाहिए। आज पूरी दुनिया जब एक ग्लोबल विलेज में रूपांतरित हो गई है, तो क्या अब भी यह मिशन असंभव है ? इन प्रश्नों के जवाब मेरे पास भी नहीं है।

पुनः एक बार स्मरण करा दूं कि यहां हम सिर्फ सरकारी अधिकारियों, नेताओं एवं अभिभावकों की मानसिक सोच एवं भारत में उपलब्ध इन्फ्रास्ट्रक्चर की बात कर रहे हैं। इस पर मुझ जैसा सामान्य इंसान भला क्या भाष्य कर सकता है ? भाष्य करने के लिए मैं कोई प्राधिकृत सक्षम अधिकारी भी तो नहीं हूँ। हां इतना जरूर है कि अपना पूरा जीवन इसी क्षेत्र को समर्पित किया है, इसलिए कुछ सुझाव देने की मेरी ये कोशिश भर है। मैं या मेरे जैसे लोग इस बारे में बात नहीं करेंगे नहीं करेंगे, तो इन मुद्दों को दूसरे क्षेत्र का व्यक्ति भला क्यों उठायेगा ? मेरा उद्देश्य भविष्य में इस क्षेत्र की ओर सकारात्मक कदम उठाने की ओर इंगित करने का है। इतनी बड़ी जनसंख्या वाले देश में खेलों की अहमियत को हमें समझना होगा। ये बात बिल्कुल सत्य है खेलों के मामलों में जो स्थिति विकसित राष्ट्रों की है वैसी

स्थिति हमारी नहीं हो सकती क्योंकि भारत एक विकसनशील देश है। अमूमन हमारे देश की स्थिति जो आज है, वो 40-50 साल पहले बिल्कुल नहीं थी। लेकिन भविष्य में इस दिशा में हमें हमारे लक्ष्य को निर्धारित करना होगा। इसके लिए जमिनी स्तर पर काम करना होगा। कला, क्रीडा, साहित्य, संस्कृति को लेकर हम आज भी प्रगत राष्ट्रों से बहुत पीछे हैं। यह हमारे लिए चिंता का विषय होना चाहिए। विकसित देश ओलंपिक खेलों में प्राप्त पदकों की संख्या से अपनी प्रगति के ग्राफ को नापते हैं, जिसमें अमेरिका चीन, रूस, जापान और यूरोपीय देश अग्रणी पर हैं। दुर्भाग्य से पदक तालिका में हमें भारत का नाम ढूँढ़ना पड़ता है।

हमारे जैसे कोच या संस्थाएं कितना भी शोर मचा लें, मगर हमारी सुनता कौन है ? कोई सुने या ना सुने हमने पवनपुत्र के माध्यम से जमिनी स्तर पर वास्तविक रूप से काम करते हुए जन जागृति करने की भरपूर कोशिश की है। जिसके माध्यम से खिलाड़ियों ने अभ्यास करते हुए अपने आपको तैयार किया। मेरा मानना है कि पहले प्रशिक्षकों को ठीक से ट्रेनिंग दी जानी चाहिए। इस विषय को लेकर मुंबई स्थित मराठी विज्ञान परिषद में 4 से 5 बार मैंने चक्कर लगाए थे। लेकिन वे सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त दिखे। 2014 में टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंस संस्था में भी जाकर डेढ़-दो घंटों तक मैंने चर्चा की। उनका सवाल यह था कि इसका खर्च कौन उठाएगा ? इन मुद्दों को संबंधित मंत्रियों तक पहुंचाना मतलब, नाको चने चबाने जैसा है। ऐसे कई प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं। जब इस तरह के प्रश्न मीडिया द्वारा उछाले जाते हैं, तब खिलाड़ी, कोच, संबंधित मंत्रालय आदि जागृत हो जाते हैं, मगर बाद में भूल जाते हैं। अंत में व्यवस्था के आगे सभी को घुटने टेकना ही पड़ता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारे खिलाड़ी अपेक्षित प्रदर्शन नहीं कर पाते, इसमें खिलड़ियों का कितना और क्या दोष है? जिमनास्टिक, एथलेटिक्स सीखना बहुत कठिन और महंगा है क्या? ये प्रश्न के कई लोगों के जेहन में आ रहा होगा। इसका जवाब है- 'नहीं।' यदि आपके अंदर खेल के प्रति श्रद्धा, थोड़ी सी बुद्धिमता, लगन तथा मेहनत करने का माद्दा हो तो चीजें आसान होती नजर आती हैं। दुष्यंत कुमार का

प्रसिद्ध शेर याद आ रहा है-

'कौन कहता है, आसमां में सुराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों।'

खेल संबंधी मेरे कुछ सुझाव

जिमनास्टिक, एथलेटिक्स, आसन (योग) और मलखांब जैसे खेलों को बढ़ावा देने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। इसे लेकर मेरे कुछ सुझाव निम्न प्रकार से हैं -

1- खेल एक शास्त्र है, इस शास्त्र का गहन अध्ययन करने वालों की टीम पर हमें फोकस करते हुए उनके द्वारा दिए गए सुझावों पर अमल करना चाहिए।

2- एकेडमिक शिक्षा में खेल जैसे विषयों का समावेश अनिवार्यतः किया जाना चाहिए।

3- सरकार (राज्य एवं केंद्र) को चाहिए की वो खेल से संबंधित विविध संगठनों / संस्थाओं का एक डाटा बेस बनाएं। उनके माध्यम से लिखित सुझाव लें और उस पर गंभीरता से काम करे।

4- सक्रिय युवा क्रीड़ा कार्यकर्ताओं और कोच की हर राज्य में टीम बनाई जानी चाहिए।

5- सरकारी एवं निजी क्रीड़ा संस्थाओं को सक्रिय करते हुए उनकी समस्याओं का समाधान करना होगा। उनकी बंद गतिविधियों को फिर से शुरू करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

6- जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर सक्षम लोगों की समितियों का गठन किया जाना चाहिए। इसे राजनीति से दूर रखना चाहिए।

7- नर्सरी, स्कूल, कॉलेज तक के विद्यार्थियों में खेल के प्रति जन जागृति करते हुए उनकी एवं अभिभावकों की रुचि अनुसार प्रारंभ से ही विविध खेल के प्रति बढ़ावा देते हुए स्पोर्ट्स टीचरों की अनिवार्य रूप से नियुक्ति करनी चाहिए।

8- सायन्स बेस्ड अच्छे कोच तैयार हों, इसके लिए उन्हें ट्रेनिंग दी जानी चाहिए।

9- खेल के लिए पोषक वातावरण और प्रॉपर मैदान या स्टेडियम की व्यवस्था हर जिले में की जानी चाहिए। ग्रामीव स्तर पर विशेष प्रयास किए जाने चाहिए।

10- खेल के उपकरण विदेशों से मंगाए जाने की बजाए हमारे देश में उस स्तर के इक्विपमेंट्स तैयार हो सकें ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

11- मुंबई की बात करें तो गांधी टँक, जवाहर विद्या भवन, सोशल सर्विस लीग, पवनपुत्र व्यायाम मंदिर, कालिदास क्रीड़ा केंद्र, समर्थ व्यायाम मंदिर, शिवाजी पार्क स्पोर्ट्स सेंटर, कुमुद विद्या मंदिर, अंधेरी स्पोर्ट्स क्लब, कामगार क्रीडा भवन (परेल), आरसीएफ क्रीड़ा केंद्र, डी.वाय. पाटील क्रीड़ा स्टेडियम (नवी मुंबई), शारीरिक शिक्षण मंडल (वडाला), लोकमान्य सेवा संघ (विलेपार्ले), प्रबोधनकार ठाकरे क्रीड़ा केंद्र, जनरल एज़्युकेशन एकेडमी, भोईर क्रीड़ा केंद्र (डोंबिवली) और पुणे, औरंगाबाद, नाशिक, कोल्हापुर, सांगली, सातारा, नागपुर, अमरावती जैसे महाराष्ट्र के प्रमुख शहरों में सरकारी, अर्द्ध सरकारी, निजी क्रीड़ा संस्थाएं, जिमखाना, हेल्थ क्लब, जिम सेंटर आदि का पुनरीक्षण करते हुए उनकी आर्थिक एवं अन्य समस्याओं का समाधान करते हुए उन्हें और अधिक सक्रिय बनांे की दिशा में काम किया जाना चाहिए।

12- ग्रामीण क्षेत्रों में भी इस तरह के संस्थाओं का गठन किया जाना चाहिए।

13- खेल से सम्बंधित सेमिनार, मार्गदर्शन शिविरों का आयोजन

किया जाना चाहिए।

14- खेलों से संबंधित शॉर्ट फिल्म्स, डॉक्युमेंट्री, पुस्तकों एवं पठनीय सामग्री आदि की व्यवस्था पुस्तकालयों के माध्यम से हर स्तर पर की जानी चाहिए।

15- गरीब एवं होनहार खिलाड़ियों के लिए विशेष योजनाएं बनाई जानी चाहिए। उनकी योग्यतानुसार शिष्यवृत्ति के साथ शोध अनुदान की व्यवस्था हो जाए तो और अधिक विद्यार्थी इस दिशा को ओर रुख करेंगे।

16- कई विदेशी संस्थाएं हैं जो इस तरह के उपक्रमों के लिए आर्थिक सहयोग देती हैं, अतः योजनाबद्ध तरीके से इस तरह के फंड प्राप्त करने हेतु प्रयास किए जाने चाहिए। इस विषय में संस्थाओं को मार्गदर्शन भी किया जाना चाहिए।

17- 30-40 की आयु के बाद खिलाड़ियों के लिए रोजगार के अवसर उबलब्ध हो सकें, इस दिशा में काम किया जाना चाहिए।

18- खेलों में अकसर सेना और पुलिस कर्मियों को अधिक अवसर प्राप्त होते हैं, तो होनहार खिलाड़ियों की भरती इन क्षेत्रों में यथासमय और सहजता से हो सके ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

19- जो शहर या गांव नदी के किनारे स्थित हैं, वहां 20 से 30 मीटर के स्विमिंग पुल बनाएं जाने चाहिए, जो कम लागत में बनते हैं।

20- ओलंपिंक जैसे तत्सम अंतरराष्ट्रीय खेलों में हमारे देश के खिलाड़ियों की सहभागिता और अधिक हो, इस दिशा में काम करते हुए उन्हे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

21- क्रीड़ा सामग्री, इक्विपमेंट्स आदि की सहज उपलब्धता, उनकी प्रदर्शनी हर शहर में आयोजित की जानी चाहिए। इसके साथ खिलड़ियों का डेमो भी रखा जाना चाहिए। इस तरह का प्रयोग हमने एक दो बार बुवा साळवी (कबड्डी खिलाड़ी) के नेतृत्व में किया था।

22- जैसे हमारे खिलाड़ी विदेशों में जाकर अपना खेल प्रदर्शन करते

हैं, उसी तरह विदेशी खिलाड़ियों को भी देश में आमंत्रित करते हुए खेल प्रक्रियाओं पर चर्चा सत्र तथा उनके डेमो का आयोजन किया जाना चाहिए।

23- पुरस्कारों की गुणवत्ता एवं महत्ता पर मंथन किया जाना चाहिए। पुरस्कार एवं खिलाड़ियों के सिलेक्शन में राजनीति नहीं की जानी चाहिए।

24- राष्ट्रीय स्तर एवं राज्य स्तर पर क्रीड़ा विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।

25- 'मिलिटरी जिमनास्टिक' जिसकी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशेष पहचान है। इसका प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए।

26- सरकारी, अर्ध सरकारी उपक्रमों में खिलड़ियों के लिए विशेष कोटा होता है। इसी तरह निजी क्षेत्र के उपक्रमों में भी खिलाड़ियों के लिए नौकरी में आरक्षण होना चाहिए।

27- हर राज्य में बच्चों के लिए जिमनास्टिक, एथलेटिक्स, मलखांब, योगा आदि के सेंटर बढ़ाए जाने चाहिए।

28- सरकारी अनुदान, ट्रस्ट, कंपनियों एवं कारपोरेट सेक्टर से प्रायोजक या आर्थिक सहयोग प्राप्त करने की दिशा में ठोस कदम उठाए जाने चाहिए। सरकारी एजेंसियों की ओर से प्रायोजक प्राप्त करने में मार्गदर्शन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

ऐसे सैकड़ों सुझाव दिए जा सकते हैं, फिलहाल कुछ सुझाव जो मेरे जेहन में आए उसे यहां यथासंभव, यथाशक्ति प्रस्तुत करने की ये मेरी कोशिश है। इसे परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता पर परिपूर्ण बनाया जा सकता है। मेरा मानना है कि बात करने से ही बात बनती है। मैं अपने हिस्से के फ़र्ज को निभा रहा हूँ, अब बारी होनहार युवाओं की है।

संस्मरण- 1

स्व. केशवराव (नाना) करंबेळकर के "दादा" उर्फ़ रामनाथ पाठारे- अशोक नायगावकर

देखते-देखते रामनाथ हरीराम पाठारे उर्फ 'दादा' की जन्म शताब्दी आ गई और नजरों के सामने हट्ठे-कट्ठे, भारी शरीरयष्टि, लंबे आस्तीन वाले खादी का शर्ट और पैंट पहने वह तेजोमय मूर्ति उपस्थित हो गई। शादी के बाद मैं चेंबूर गांवठान में रहने आया था। दादा के परम स्नेही और बचपन के मित्र 'नाना उर्फ केशव अनंत करंबेळकर, जो मेरे ससुर थे। उनके कारण ही मुझे दादा का सानिध्य प्राप्त हुआ। सीने से लगाए, एक हाथ में कागजों की फाइल सूरज की गर्मी से पसीने से तरबतर, सीधी गर्दन से चलने वाले दादा आते-जाते रास्ते में मुझे मिल जाते थे। दादा पेशे से आर्किटेक्ट थे। जिस जगह पर मैं कई वर्षों से रह रहा हूँ, उसका नक्शा भी उन्होंने ही बनाया था। उनके पास चेंबूर और आस-पास के परिसर, विशेषतः चेंबूर गांवठन के सारे नक्शे थे। किसने कितना अतिक्रमण किया है, इसकी जानकारी होते ही वे हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाते थे। इसलिए क्षेत्र में उन्होंने अपने कई शत्रु भी पैदा कर लिए थे। लेकिन सच्चे गांधीवादी और सत्य के प्रति समर्पित दादा कभी किसी के सामने न झुके, न डरे। मनुष्य का स्वभाव उसके समय काल के अनुरूप होता है। दादा जैसे व्यक्तित्व उस समय काल में अपनी विशेष पहचान बनाते हुए समाज के लिए बहुत कुछ कर गए। राष्ट्रीय कांग्रेस के खेमे से निकले ऐसे कई देशभक्त उस दौर में गाँव-गाँव में तैयार हुए। मगर आज दुख इस बात का हो रहा है कि अपने नैतिक आचरण का धाक जमाने वाले ऐसे समर्पित लोगों की संख्या आज कम हो गई है। भ्रष्ट मार्गों से

पैसा कमाना लोगों की नियति बन गई है। सामाजिक तथा सार्वजनिक काम के नाम पर अपनी जेब भरना दादा के खून में नहीं था। इसीलिए ऐसे महापुरुषों की जन्म शताब्दी मनाई जाती है। कभी-कभी मतानुभेद के चलते उनके और नाना के बीच तीखी नोकझोंक भी हो जाती थी। "केशव तेरे दरवाजे पर अब कदम नहीं रखूँगा," कहते हुए दादा चप्पल पहनते और गुस्से से बाहर निकल जाते थे। मजे की बात तो यह थी कि अगले ही दिन दादा और नाना एक दूसरे से प्यार से बातचीत करते नजर आते, जो मेरे लिए आश्चर्य का विषय हुआ करता था। अपना व्यवसाय संभालते हुए दादा ने उस दौर में एक व्यायामशाला की स्थापना की। उनमें से कई लोगों को राज्य स्तरीय पुरस्कार भी मिले और कई लोग बड़े-बड़े पदों पर आसीन हुए। लेकिन आज अफसोस हो रहा है कि ऐसी सेवाभावी संस्था को जारी रखना बहुत मुश्किल हो रहा है। निस्वार्थ भाव से काम करने वाले कार्यकर्ताओं और महंगे उपकरण खरीदने के लिए मदद का हाथ बढ़ाने वाले दानदाता इस शताब्दी वर्ष में आगे आएं, ऐसी सद्भावना व्यक्त करते हुए मैं दादा के प्रति अपनी आदरांजलि अर्पित करता हूँ।

अशोक नायगावकर
(मराठी के वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार)

(मई 2011 में प्रकाशित पवनपुत्र की स्मारिका से साभार)

संस्मरण- 2

श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर (गुरुकुल) का एक अनूठा सफर- प्रदीप चेंबूरकर

(श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर के विद्यार्थी। राष्ट्रीय स्वर्ण पदक विजेता एवं शिवछत्रपति पुरस्कार से सम्मानित खिलाड़ी।)

वर्ष 1963 में टीवी, इंटरनेट, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया आदि नहीं था। यहां तक कि साधारण लैंडलाइन टेलीफोन भी कुछ ही लोगों के पास था। तब चेंबूर गांव में युवाओं को व्यायाम के प्रति आकर्षित करना, उनकी ऊर्जा को संजीवनी प्रदान करते हुए बलोपासना की ओर उन्हें प्रेरित करने का काम 'दादा' ने किया। अपनी खुद की जगह में एक सार्वजनिक व्यायामशाला शुरू करने का साहसी निर्णय उस दौर में 'दादा' अर्थात स्वतंत्रता सेनानी स्व. रामनाथ हरीराम पठारे ने लिया।

उस दौर में चेंबूर गांवठान एक मनोरम गांव था, जैसा कि चित्रों में हम अकसर गांव का दृश्य देखते हैं, कुछ वैसा ही। जिस तरह शाहीर होनाजी बाळा की लोकप्रिय भूपाळी (गीत) "घनश्याम सुंदरा श्रीधरा अरुणोदय झाला" में वर्णित गांव की भोर का दृश्य प्रस्फुटित होता है, ठीक उसी तरह चेंबूर में भोर के दृश्य का अनुभव हमने किया है। घनी हरी-भरी झाड़ियां, कुआं, पेड़-पौधे, गौरैयों की चहचहाहट, बुलबुल एवं अन्य पक्षियों की किलबिलाहट आदि की आवाज के साथ सुबह अपने आप नींद खुल जाती थी। धीरे-धीरे पुरानी बस्तियों का पुनर्विकास होता गया और दुर्भाग्य से अब गौरैया (चिवुताई) गायब हो गई हैं। तब अधिकांश घर खपरैल के हुआ करते थे, उसके सामने छोटा-सा एक बगीचा हुआ करता था। घर के पीछे

नारियल और आम के बड़े-बड़े पेड़, सामने आंगन और उसके दाहिनी ओर तुलसी वृन्दावन हुआ करता था। दिवाली के अवसर पर तुलसी वृन्दावन के सामने कड़ाके की ठंड में अभ्यंग स्नान करते हुए हमारा मन प्रसन्न हो जाता था। चेंबूर का बाहरी परिदृश्य जंगल जैसा था। मुंबई के पास बसा यह एक उपनगर तब इतना लोकप्रिय नहीं था। लोग चेंबूर में बसने से कतराते थे, क्योंकि वहां अत्यावश्यक सुविधाओं का अभाव था। चेंबूर के निवासी अपना मकान किराए पर देने के लिए प्रायः उत्सुक रहते थे। चेंबूर आने के लिए लोकल ट्रेन की कोई खास व्यवस्था नहीं थी, इसलिए लोग चेंबूर से कुर्ला स्टेशन तक पैदल आते-जाते थे और वहां से लोकल पकड़ते थे। मगर चेंबूर आज हर दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपनगर बन गया है। डायमंड गार्डन, आंबेडकर गार्डन, सांडू गार्डन, गोल्फ क्लब और सड़क के दोनों किनारों पर छोटे-बड़े पेड़ पौधे, झाड़ियां आदि चेंबूर को और अधिक आकर्षक बनाते हैं। आज चेंबूर चर्च और कुछ निकटवर्ती इमारतों के साथ-साथ गोल्फ क्लब को हेरिटेज का दर्जा प्रदान किया गया है। जिस प्रकार बैंगलोर को 'गार्डेन सिटी ऑफ इंडिया' कहा जाता है, उसी प्रकार चेंबूर को कभी 'गार्डन सबर्ब ऑफ मुंबई' कहा जाता था।

'दादा' के नाम से मशहूर रामनाथ पाठारे ने 1940 के आस-पास 'परस्पर सहाय्यक संघ' नामक एक सामाजिक संस्था की स्थापना की थी। दादा की हृष्ट पृष्ट शरीरयष्टि तथा लंबी-चौड़ी कद काठी थी। वे लंबे आस्तीन वाला खादी का शर्ट और पैंट पहनते थे। दादा का नाम आते ही एक रोबदार व्यक्तित्व आंखों के सामने उपस्थित हो जाता है। वे सच्चे गांधीवादी और सत्यता के प्रबल पक्षधर थे। आर्किटेक का काम करते थे। चेंबूर के पूरे परिसर और विशेषकर गांवठान का नक्शा उनके पास था। दादा की पहल से ही चेंबूर नाका पर लोकमान्य पुस्तकालय शुरू हुआ था, जो अब सुसज्जित पुस्तकालय के रूप में लोगों के पठन–पाठन की भूख मिटा रहा है। अपने व्यवसाय एवं अन्य कामकाज को संभालते हुए दादा के मन में हमेशा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को लेकर कई तरह के विचार एवं योजनाएं चलती रहती थीं, जिन्हें लेकर वे सदैव सक्रिय रहते थे।

उत्सवों के दौरान लड़कियां अपने सिर पर दीप रखकर संतुलन बनाते हुए योगासन का प्रदर्शन करती थीं, जो आस-पास के परिसर में आकर्षण का केंद्र हुआ करता था। ये सब दादा की प्रेरणा से होता था।

आगे चलकर दादा ने श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना 1963 में की। अपनी व्यायामशाला के बच्चों पर वे पैनी नजर रखते थे। उनके प्रति विद्यार्थियों के मन में हमेशा आदरयुक्त डर रहता था। चेंबूर एजुकेशन सोसाइटी द्वारा संचालित चेंबूर हाईस्कूल के भी वे संस्थापक सदस्य थे। चेंबूर गांवठान में एक और महत्वपूर्ण व्यक्ति थे- केशव (नाना) करंबेळकर, वो भी सामाजिक कार्यकर्ता और स्वतंत्रता सेनानी थे। वे हमेशा पवनपुत्र व्यायाम मंदिर का समर्थन करते थे। करंबेळकर सर, दादा के सहयोगी और चेंबूर हाईस्कूल तथा लोकमान्य तिलक पुस्तकालय के भी संस्थापक सदस्य थे। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए चेंबूर हाईस्कूल एक अग्रणी संस्था के रूप में उस दौर में उभरकर सामने आई। यह चेंबूर का पहला मराठी माध्यम का हाईस्कूल था। हाईस्कूल की ओर से प्रति वर्ष थिएटर उत्सव, शिक्षक दिवस, पुष्पोत्सव, चर्चा सत्र, वाक्क प्रतियोगिता, निबंध प्रतियोगिता, चित्रकला प्रतियोगिता और भव्य स्पोर्ट्स महोत्सव का आयोजन किया जाता था। समय के साथ-साथ चेंबूर हाईस्कूल के कई विद्यार्थी विभिन्न क्षेत्रों में उभरकर सामने आए। इनमें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के जिम्नास्ट, एथलीट, प्रसिद्ध पत्रकार एवं संपादक (जैसे कुमार केतकर-लोकसत्ता),डॉक्टर्स, इंजीनियर्स, गुणी कलाकार, व्यवसायी (जैसे आनंद सांडू- त्रिधातु और सांडू ब्रदर्स) इत्यादि। चेंबूर हाईस्कूल के कई छात्र आज विदेशों में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं। हाईस्कूल का अपना एक विस्तृत मैदान था, जो आज भी हमें आकर्षित करता है। इसे हम बच्चों ने अपने श्रमदान से बनाया था, इसलिए इसे देखकर आज भी अभिमान होता है। चूंकि इस मैदान का निर्माण भ. मा. पंत सर की प्रेरणा से हुआ था, इसलिए इसका नाम भ. मा. पंत क्रिड़ांगण रखा गया है। इसी मैदान में स्कूल का भव्य क्रीडा महोत्सव ओलंपिक के तर्ज पर आयोजित किया जाता था। प्रतियोगिता शुरू होने से पहले क्रीडा ज्योति प्रज्वलित की

जाती थी, उसके बाद खिलाड़ियों को शपथ दिलाई जाती थी। सभी टीम के खिलाड़ी मैदान में संचलन करते, उसके बाद अतिथियों द्वारा महोत्सव के उद्‌घाटन की घोषणा की जाती थी। शांति के प्रतीक के रूप में कबूतरों को आकाश में उड़ाया जाता था। अंतिम दिन पटाखों की आतिशबाजी के साथ खेल महोत्सव का समापन किया जाता था। विद्यालय के खेल प्रशिक्षकों एवं विद्यार्थियों का उत्साह देखते ही बनता था। कदम सर, आजगांवकर सर, पंत सर और देसाई मैडम स्वयं स्वयं स्पोर्ट्स यूनिफॉर्म में विद्यार्थियों के साथ ग्राउंड में उपस्थित रहते थे। खो-खो, लंगड़ी, कबड्डी, बास्केटबॉल और एथलेटिक्स जैसे खेलों में चेंबूर हाईस्कूल ने हमेशा अपना उत्कृष्ट प्रदर्शन दिया, जिसकी चर्चा आज भी होती है। दिवाली और गर्मी की छुट्टियों में हाईस्कूल के मैदान में मलखांब और जिमनास्टिक के शिविर आयोजित किए जाते थे। इस शिविर में नॅशनल इंस्टिट्यूट ऑफ स्पोर्ट्स (NIS) से गुर्जर सर प्रशिक्षण देने आते थे। इसके अलावा नाना अर्थात सुहास पाठारे इन शिविरों के आयोजन नियोजन पर बारीकी से नज़र रखते थे। खिलाड़ियों को अपने कौशल्य में सुधार लाने यह एक सुनहरा अवसर हुआ करता था।

चेंबूर हाईस्कूल की ओर से आयोजित किए जाने वाले नाट्य महोत्सव लोगों के लिए गौरव एवं आकर्षण का विषय हुआ करता था। इसके कारण हम स्कूली बच्चों और चेंबूर के नागरिकों को कई दर्जेदार नाटक देखने को मिलते थे। डॉ. काशीनाथ घाणेकर, प्रभाकर पणशीकर, श्रीकांत मोघे, प्रसाद सावकार, भार्गवराव आचरेकर, शरद तळवळकर, भालजी पेंढारकर, रामदास कामत, दिलीप कोल्हटकर, आशा काळे, कीर्ति शिलेदार जैसे कई प्रसिद्ध कलाकारों को करीब से देखने का यह सुनहरा अवसर हुआ करता था, जो आज भी स्मृतियों में ताजा है। इन कलाकारों ने मराठी रंगमंच को एक नई ऊंचाई प्रदान की। उन सुनहरे दिनों को याद करते हुए आज भी मन मचलने लगता है। आज लगता है की काश, वो दिन फिर से लौट आते!

'परस्पर सहाय्यक संघ' के माध्यम से चेंबूरवासियों को प्रेरणा देने वाले

स्वतंत्रता सेनानी 'दादा' उर्फ़ रामनाथ पाठारे जी ने 14 नवंबर, 1963 को श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर की स्थापना की। आगे चलकर अपने बेटे सुहास पाठारे (नाना) को उसी प्रेरणा और जज्बे के साथ इस व्यायामशाला की जिम्मेदारी सौंपी। नाना अर्थात सुहास पाठारे तब चेंबूर हाईस्कूल में गणित और विज्ञान विषय पढ़ाते थे, साथ ही वे एक कुशल खिलाड़ी भी थे। वाक्कपटुता, उदारता, परोपकार, कर्तृत्व, नेतृत्व, साफ सुथरे चरित्र और सीधे सरल व्यक्तित्व के धनी नाना ने व्यायाम मंदिर के भार को सफलता से संभालते हुए उसे एक नई ऊंचाई प्रदान करने का आजीवन प्रयास किया। व्यायामशाला में विद्यार्थियों से नाममात्र शुल्क लिया जाता था। जो नाममात्र शुल्क लिया जाता था, उसे भी नाना प्रतियोगिताओं में शानदार प्रदर्शन करने वाले खिलाड़ियों को स्कॉलरशिप के रूप में निस्वार्थ भाव से वापस कर देते थे। खिलाड़ियों को प्रोत्साहन देने की उनकी ये विशेष शैली थी। इसके साथ-साथ वे मलखांब और जिमनास्टिक का भी प्रशिक्षण देते थे। निश्चल और परोपकारी स्वभाव के नाना अपने विद्यार्थियों के बीच काफी लोकप्रिय थे। नाना के नेतृत्व में पवनपुत्र व्यायाम मंदिर की ख्याति जिला और राष्ट्रीय स्तर से होते हुए अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुंच गई। ये प्रशिक्षकों की मेहनत और विद्यार्थियों की लगन का नतीजा था। धीरे-धीरे ये व्यायायशाला चेंबूर ही नहीं बल्कि मुंबई की शान बन गई। इसकी शुरुआत मलखांब, योगा, जिमनास्टिक और पावर लिफ्टिंग से हुई थी। कुछ डम्बल्स, विभिन्न आकार के मुद्गल (कलाई और कंधों को मजबूत करने के लिए उपयोग किए जाते हैं), कुछ प्लेट्स और बारबेल ऐसे गिने-चुने व्यायाम के उपकरण तब व्यायामशाला में हुआ करते थे। व्यायामशाला के मध्य में बजरंगबली की तस्वीर थी, उसके सामने मलखांब का बार था। नाना के छोटे भाई अनिल पठारे का वेट लिफ्टिंग और जिमनास्टिक के उपकरण बनाने का व्यवसाय था। उनका और नाना का हमेशा प्रयास रहता था कि अंतरराष्ट्रीय मानक स्तर के उपकरण भारत में बनाये जाएं और सहजता से उपलब्ध कराए जाएं। इस कोशिश में वे सफल भी हुए। अनिल ने काफी मेहनत और लगन से कई तरह के आधुनिक उपकरण बनाए, जिसका लाभ

कई संस्थाओं को हुआ।

खेल प्रतियोगिताओं में पवनपुत्र की बढ़ती उपलब्धियों के कारण चेंबूर गांव के साथ–साथ बाहर के लोग भी उसके सदस्य बनने लगे थे। प्रारंभ में अर्थात 1963 में मधुकर दरेकर बतौर कोच हमें पावर लिफ्टिंग और वेट लिफ्टिंग का प्रशिक्षण देते थे। बाद में उन्हें महाराष्ट्र सरकार की ओर से शिवछत्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। दरेकर सर के बाद 'पै' सर वेट ट्रेनिंग और पावर लिफ्टिंग का प्रशिक्षण देने लगे। उनके मार्गदर्शन में सावंत, संजीवन भास्करन और मनोज मोरे जैसे खिलाड़ी तैयार हुए। मनोज मोरे को 2019-20 के लिए महाराष्ट्र सरकार की ओर से पावर लिफ्टिंग में शिवछत्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके पश्चात उन्हें "स्ट्रॉन्ग मैन ऑफ इंडिया" का अवॉर्ड भी मिला। पवनपुत्र के पूर्व छात्र रवि कसेळकर के अथक परिश्रम और मार्गदर्शन से 'विक्रमादित्य' संजीवन भास्करन जैसे अंतरराष्ट्रीय खिलाड़ी का उदय हुआ। इस तरह पवनपुत्र व्यायाम मंदिर के खिलाड़ियों ने आसन (योग), मलखांब, आर्टिस्टिक जिम्नास्टिक्स, रिदमिक जिम्नास्टिक्स, वेट ट्रेनिंग और पावर लिफ्टिंग जैसे खेलों में कई नए-नए कीर्तिमान स्थापित किए, साथ ही खेल के अन्य विधाओं में अपना भरपूर योगदान दिया। अभ्यास के दौरान जिम का वातावरण हमेशा उत्साहवर्द्धक, प्रफुल्लित और ऊर्जावान बना रहता था। विद्यार्थियों की शारीरिक एवं मानसिक उन्नति के विषय में नाना निरंतर चिंतन करते रहते थे। 1966 में चेंबूरकर, वढावकर और वेसावकर परिवार के विद्यार्थी श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर में दाखिल हुए और आसन, मलखांब, जिमनास्टिक के क्षेत्र में इन लोगों ने कई सफलताएं हासिल करते हुए पवनपुत्र को चरम पर पहुंचा दिया। वह पवनपुत्र का स्वर्ण काल था।

मेरे पिताजी श्री अनंत चेंबूरकर को बचपन से ही व्यायाम का बहुत शौक था। वे पाठारे क्षत्रिय समाज के कार्यकारी मंडल के सदस्य थे। रोज सुबह चार बजे सूर्य नमस्कार करके ही वे परेल स्थित अपने मध्य रेलवे के वर्कशॉप में जाते थे। उनके प्रोत्साहन से ही मैं और मेरा छोटा भाई महेंद्र

(राजा) 1966 से नाना के मार्गदर्शन में पवनपुत्र में प्रशिक्षण के लिए जाने लगे। लगभग उसी समय व्यायामशाला के बगल में रहने वाले विनय तथा प्रकाश वेसावकर (विनु-बंडी) और उदय-संजय वढावकर बंधुओं ने आसन और मलखांब का अभ्यास शुरू किया था। कुछ समय बाद मेरी छोटी बहन प्रतिभा और सबसे छोटी बहन मोहिनी तथा उदय की बहनें सुषमा और स्मिता वढावकर भी जिमनास्टिक का अभ्यास करने लगीं। यहीं से लड़कियों के बीच जिमनास्टिक का आकर्षण बढ़ता गया। तत्पश्चात कई लड़कियों का व्यायामशाला में प्रवेश हुआ। लड़कियों के लिए लगने वाले उपकरण जैसे बॅलेन्सिंग बार, अनइवन पॅरलल बार्स नाना ने उपलब्ध कराए, जिससे महिला खिलाड़ियों को काफी लाभ हुआ। इनमें से कई महिला खिलाड़ियों ने राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर अपना नाम रोशन करते हुए संस्था का नाम भी बढ़ाया।

शुरुआती दौर में लड़के आसन, मलखांब और जिमनास्टिक का अभ्यास करते थे, साथ ही सूर्य नमस्कार भी करते थे। तब सूर्य नमस्कार की प्रतियोगिताएं नियमित रूप से हुआ करती थीं। हमारी वानर सेना दोपहर तीन बजे व्यायामशाला पहुँचकर पहले साफ-सफाई करती थी, उसके बाद व्यायाम का नियमित अभ्यास क्रम शुरू होता था। सप्ताह में एक बार हम मलखांब के परिसर को गोबर से लिपते थे। व्यायामशाला की स्वच्छता का काम नियमित रूप से किया जाता था, जिससे पॉजिटिव वातावरण बना रहता था। कभी-कभी दोपहर में दादा पाठारे की नजर बचाकर हम बच्चे पेड़ से जामुन तोड़ने का कार्यक्रम करते थे। इस काम में हमें बड़ा आनंद आता था। यह हमारा प्यारा उपक्रम हुआ करता था। हमारी नियमित प्रैक्टिस रात के करीब 10 बजे तक चलती थी। तब स्पर्धा में 90 सेकंड में मलखांब और आसन की प्रस्तुति पांच जजों (परीक्षकों) के सामने की जाती थी। इस तरह वर्षों की कड़ी मेहनत को 90 सेकंड में प्रस्तुत करने की कसौटी से हम खिलाड़ियों को गुजरना पड़ता था। खेल की शुरुआत और समापन (मलखांब तथा जिमनास्टिक में माउंट और डिसमाउंट), एक्झिक्युशन, कठिनता, लचीलापन (फ्लेक्जीब्लिटी), सहजता, सेट में

आकर्षक एवं सफाईदार प्रस्तुति आदि पहलुओं पर विचार करते हुए निर्णायक दस में से खिलाड़ियों को मार्क्स देते थे। स्पर्धात्मक माहौल बनाए रखने के लिए नाना हमारे बीच आंतरिक प्रतियोगिताओं का आयोजन नियमित रूप से करते थे। सबसे अच्छे अंक पाने वाले को कॅटबरी चॉकलेट पुरस्कार के रूप में देते थे। इस तरह स्पर्धात्मक माहौल हमेशा बना रहता था, जिससे खिलाड़ियों की तैयारी अपने आप हो जाती थी। इसके कारण बड़ी प्रतियोगिताओं के दौरान मन में किसी प्रकार का डर या अनावश्यक तनाव नहीं रहता था। बेहतर प्रेजेंटेशन और तनाव को दूर करने की दृष्टि से नाना का यह उपक्रम काफी कारगर साबित हुआ। परिणामतः खिलाड़ियों ने हर प्रतियोगोता में अपना बेस्ट परफॉर्मेंस दिया, इसका एहसास हमें आज भी होताा है।

मलखांब की हमारी पहली राष्ट्रीय प्रतियोगिता त्रिपुरा राज्य की राजधानी अगरतला में सम्पन्न हुई। हमारे साथ महाराष्ट्र अमेच्योर जिमनास्टिक्स एसोसिएशन के राष्ट्रीय निर्णायक एवं अधिकारी रामदास कल्याणपुरकर, व्यास सर (जिन्होंने टोकियो ओलंपिक में भारत का प्रतिनिधित्व किया था), धोत्रे सर और मलखांब के कोच सावंत सर थे। आसाम जाने के लिए तब मुंबई से कोई सीधी ट्रेन नहीं थी। अतः वहां जाने में छह दिन और वापस आने में छह दिन, इस तरह बारह दिन का सफर हमने उस दौर में किया था। नाना ट्रेन में भी हमसे अभ्यास करवाते थे, ताकि वहां पहुंचकर बॉडी स्टीफ ना हो जाए। 'कोचेस विन दी मॅचेस' इस उक्ति के अनुसार नाना के सटीक मार्गदर्शन के कारण ही व्यायाम मंदिर के खिलाड़ियों ने अनेक प्रतियोगियों में भरपूर यश सम्पादन किया। बाद में भट नामक विद्यार्थी को सावंत सर जर्मन में मलखांब के प्रदर्शन के लिए अपने साथ ले गए थे।

मांसपेशियों को मजबूत बनाने के लिए यथोचित व्यायाम प्रकार बताना, प्रत्येक खिलाड़ी के स्ट्राँन्ग और वीक पॉइंट्स खोजकर उसे इंगित करना और उसमें सुधार लाना, पौष्टिक आहार और मानसिक सुदृढ़ता के

बारे में उचित मार्गदर्शन करना आदि विशेषताओं के कारण ही नाना एक बेहतरीन कोच के रूप में उभरकर सामने आए। खेल के विविध पहलुओं पर वे बारीकी से विचार करते थे और हमें समझाते थे। नाना खिलाड़ियों की प्रस्तुति पर विशेष रूप से ध्यान देते थे। वे अपने खिलाड़ियों से अपने बच्चे की तरह प्यार करते थे। विविध प्रतियोगिताओं के लिए खिलाड़ियों का अलग-अलग सेट हुआ करता था, क्योंकि सबकी शरीर रचना एवं क्षमता अलग-अलग होती है। नाना की सोच काफी एडवांस थी अतः उसी सोच के साथ वे खिलाड़ियों की तैयारी करवाते थे। मलखांब में स्पर्धात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए 'वेल और सुई डोरा' नामक खेल प्रकार हर प्रतिभागी के पास होना चाहिए, इसका वे विशेष ख्याल रखते थे, जो बड़ा उपयोगी साबित होता था। बड़ौदा में रहने वाले नाना के मित्र किरीट प्रधान हमें ये दोनों प्रकार सिखाते थे। किरीट प्रधान के दो भाई चेंबूर में रहते थे। सबसे छोटा भाई विजय प्रधान जो मेरा सहपाठी था, वह खो-खो खेलने में निपुण था। इससे उनका मुंबई आना-जाना लगा रहता था।

मलखांब के लिए आवश्यक शारीरिक शक्ति तथा क्षमता के लिए 'वेट ट्रेनिंग, 'लचीलेपन (फ्लेक्जीब्लिटी) के लिए 'योगा' और 'सूर्य नमस्कार' तथा स्टॅमिना बढ़ाने के लिए 'स्विमिंग एवं एथलेटिक्स का अभ्यास नाना विद्यार्थियों को नियमित रूप से करवाते थे। पौष्टिक आहार खाने पर भी नाना का विशेष ध्यान रहता था। मलखांब में फ्रंट और बॅक समरसॉल्ट करते समय एयरसेंस महत्वपूर्ण होता है। इसे समझने के लिए नाना हम विद्यार्थियों को स्विमिंग पुल ले जाते थे। वहां ऊंचे स्प्रिंग बोर्ड से पानी में लॅन्डिंग का अभ्यास करवाते थे। ऐसा करते समय अक्सर पानी की मार हमें झेलनी पड़ती थी। इसका लाभ मलखांब करते समय होता था। इस तरह मलखांब में निपुणता हासिल करने के लिए नाना शरीर के सर्वांगीण विकास और प्रतियोगिता में कहीं कोई कमी ना रह जाए, इसका पूरा ध्यान रखते थे। ऑर्थोपेडिक और स्पोर्ट्स मेडिसिन के कुशल डॉक्टर रवि बापट उस समय केईएम अस्पताल के डीन थे। नाना हमें डॉ. बापट के पास शारीरिक जांच और उचित स्पोर्ट्स डाइट के सलाह के लिए भी ले जाते थे। नाना की

दूरदर्शिता का लाभ भविष्य में कई खिलाड़ियों को हुआ, जिसे लोग आज भी याद करते हैं।

सन् 1969 से पवनपुत्र के खिलाड़ियों की विविध स्तर की प्रतियोगिताओं में सहभागिता करने की यात्रा शुरू हुई। प्रारंभ में योग प्रतियोगिताओं में पदक दिलाने में कई खिलाड़ियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसके तुरंत बाद मलखांब, जिमनास्टिक (आर्टिस्टिक्स और रिदमिक) में भी पवनपुत्र व्यायाम मंदिर का वर्चस्व स्थापित होने लगा। लड़कों के साथ-साथ लड़कियां भी जिमनास्टिक में बेहतर प्रदर्शन करने लगी थीं। 1966 से 1974 के दौरान पवनपुत्र का नाम राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर लगातार झलकता रहा। इसी दौरान 1973-74 में पवनपुत्र व्यायाम मंदिर के प्रदीप चेंबूरकर को मलखांब के लिए महाराष्ट्र सरकार का पहला शिवछत्रपति पुरस्कार प्रदान किया गया, जो सबके लिए गौरव का विषय बना। अगले वर्ष 1974-75 में भी मलखांब का शिवछत्रपति पुरस्कार पवनपुत्र के वरिष्ठ राष्ट्रीय खिलाड़ी उल्हास करपे ने जीता। 1975-76 में फिर पवनपुत्र व्यायाम मंदिर के महेंद्र चेंबूरकर ने शिवछत्रपति पुरस्कार जीतकर सबको चकित कर दिया। 1976-77 में विनय वेसावकर ने जिम्नास्टिक्स के लिए दिए जाने वाले शिवछत्रपति पुरस्कार प्राप्त करके जिमनास्टिक के श्रेणी में भी पवनपुत्र का नाम राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाया। इस तरह पवनपुत्र व्यायाम मंदिर ने लगातार तीन बार शिवछत्रपति पुरस्कार जीतने की हैट्रिक लगाई और पूरे महाराष्ट्र में अपना परचम लहराया। इससे हम खिलाड़ियों के भी हौसले बुलंद थे। इसके बाद 1976 में पवनपुत्र व्यायाम मंदिर 'जिमनास्टिक फेडरेशन ऑफ इंडिया' (जीएफआई) में शामिल हुआ।

'ओलंपिक गेम्स' जो सर्वोच्च अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता मानी जाती है, उसमें 'जिम्नास्टिक्स-आर्टिस्टिक्स' में तत्कालीन समय की मांग के अनुसार पॅरलल बार तथा रोमन रिंग्स को अपनाया गया। जिमनास्टिक न केवल एक खेल का प्रकार है बल्कि यह एक कला भी है। वैसे हर खेल में कोई ना कोई

कला तत्व मौजूद होता है, लेकिन जिमनास्टिक में यह कला, बड़ी ही सुंदरता और नजाकत के साथ प्रस्तुत होती है। जब शरीर का लय और मन की एकाग्रता का मिलन होता है तब एक अद्‌भुत प्रदर्शन का चमत्कार होता है। उस समय के प्रख्यात खेल प्रशिक्षक एवं शिक्षा विशेषज्ञ स्व. भगवंत माधव पंत सर ने चेंबूर स्थित लोकमान्य पुस्तकालय में ओलंपिक तथा जिमनास्टिक से संबंधित पुस्तकों की सीरीज का समावेश किया, जो विद्यार्थियों के लिए काफी प्रेरणादाई एवं उपयोगी सिद्ध हुआ। सोवियत संघ, जर्मन एवं ब्रिटिश एम्बेसी (दूतावास) की पुस्तकें और 16 एम.एम. की फिल्मों का इनमें समावेश था। अंतरराष्ट्रीय स्तर के तैराकी प्रतियोगिताओं में खिलाड़ियों के लिए यह काफी मार्गदर्शक साबित हुआ। समय के साथ चलते हुए आधुनिक जिमनास्टिक उपकरणों के कारण श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर ने महाराष्ट्र में अग्रणी स्थान हासिल किया और अपनी विशेष पहचान बनाई। मलखांब और आसन के विविध प्रकार, जिमनास्टिक में एक तरह से पूरक का काम करते हैं। खिलाड़ियों ने इसे अपने अनुभव से महसूस किया। मेरा मानना है कि सभी खिलाड़ियों को प्रारंभ में मलखांब और आसन का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से दिया जाना चाहिए। विविध प्रकार के खेलों में पवनपुत्र की प्रगति और खिलाड़ियों को प्राप्त पुरस्कारों के आधार पर पवनपुत्र व्यायाम मंदिर को महाराष्ट्र का सर्वोच्च शिवछत्रपति पुरस्कार (संस्था) महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रदान किया गया। यह हम सभी के लिए गौरव का पल तथा मुंबईकरों के लिए अभिमान का विषय था। कुल मिलाकर राज्य सरकार के 18 पुरस्कार तथा केंद्र सरकार द्वारा एक अर्जुन पुरस्कार (वेटलिफ्टिंग) पवनपुत्र के खिलाड़ियों ने अर्जित किया, जो वाकई में बहुत बड़ी उपलब्धि थी। सुहास पठारे उर्फ़ नाना को खेल के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान के लिए महाराष्ट्र सरकार द्वारा गुरु की श्रेणी में शिवछत्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया, यह हम सबके लिए अभिमान एवं गौरव का विषय था। निकट भविष्य में भी ऐसी कई उपलब्धियां हासिल करते हुए संस्था दिन प्रति दिन नई ऊंचाइयों को छूती रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इन तमाम उपलब्धियों के साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर

पर भारत की अपनी विशेष पहचान बने, अपने इस सपने को साकार करने की दिशा में पवनपुत्र व्यायाम मंदिर लगातार प्रयासरत रहा है। भारत के खिलाड़ी भी इसी मनोकामना के साथ आगे बढ़ रहे हैं। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए सरकारी स्तर पर विशेष रूप से गौर करने की जरूरत है। हमारे देश में प्रतिभाओं की कमी नहीं है, आवश्यकता है, उन्हें सुयोग्य अवसर प्रदान करने की और मार्गदर्शन की।

इसी दौरान तात्या तळवळकर ने व्यावसायिक आधार पर चर्नी रोड में तळवळकर्स जिम शुरू किया। तत्पश्चात उनके पुत्र श्री मधुकर तळवळकर ने अत्याधुनिक उपकरणों के साथ मुंबई और महाराष्ट्र में कई शाखाएं शुरू कीं। तळवळकर की बॉडी बिल्डिंग (शरीर सौष्ठव) और पवनपुत्र की आसन, मलखांब, जिम्नास्टिक, वेट ट्रेनिंग तथा पावर लिफ्टिंग के क्षेत्र में समानांतर घुडदौड़ कई वर्षों तक जारी थी। व्यायाम के क्षेत्र में ये दो धाराएं थीं, बावजूद इसके समांतर रूप से दोनों संस्थाएं लोगों को कई वर्षों तक सुखद अनुभूति देती रहीं। आदरणीय नाना से प्राप्त स्पर्धात्मक प्रशिक्षण और जिम प्रबंधन में मधुकर सर का मार्गदर्शन, इन दोनों के आशीर्वाद तथा प्रेरणा से मेरा अपना 'चेंबूरकर हेल्थ क्लब' पिछले 35 वर्षों से चेंबूर में कार्यरत है। इन दोनों महान व्यक्तियों से प्रेरणा लेकर आगे कई खिलाड़ियों ने खुद के जिम और जिमनास्टिक सेंटर शुरू किए। सुहास लोहार अंधेरी क्रीड़ा संकुल में स्थित श्रीपवनपुत्र के जिमनास्टिक शाखा का प्रबंधन संभाल रहे हैं। अनिल थोरात जिन्हें 2022-23 में जिला स्तर का गुणवंत कोच पुरस्कार प्राप्त हुआ, वे नेहरू नगर कुर्ला में श्रीपवनपुत्र की शाखा चला रहे हैं। प्रकाश रेवाळे (अंतरराष्ट्रीय रेफरी) चेंबूर स्थित 'चेंबूर महिला समाज' सेंटर को सफलतापूर्वक संभाल रहे हैं। मधुकर तळवळकर सर और सुहास पठारे सर द्वारा फिटनेस तथा व्यायाम के क्षेत्र में दिए गए इस महान योगदान के लिए मेरा उन्हें करबद्ध प्रणाम!

समय के साथ पूरे महाराष्ट्र में युवा लड़कों और लड़कियों के लिए जिम्नास्टिक्स के प्रणेता और प्रवर्तक के रूप में श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर ने

अपनी विशेष पहचान कायम की है। इस व्यायाम मंदिर में मलखांब की शुरुआत 1963 में और जिमनास्टिक की शुरुआत 1967 के आस-पास हुई। इसके बाद राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं का सफर आरंभ हुआ और वहां भी अपनी सफलता के परचम लहराने में संस्था को कई सफलताएं मिली। 1976 में झांसी में संपन्न राष्ट्रीय जिमनास्टिक प्रतियोगिता में पहला राष्ट्रीय पुरस्कार श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर ने जीता और 'जिमनास्टिक फेडरेशन ऑफ इंडिया (जीएफआई)' में दस्तक दी, जहां प्रतिभा चेंबूरकर ने बॅलेंसिंग बीम के राष्ट्रीय प्रतियोगिता में अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रदर्शन किया, वहीं मंजुश्री चिवटे ने फ्लोर प्रकार में 'गोल्डन गर्ल' के रूप में अपनी पहचान बनाई। कोमल पाटील ने शारीरिक फ्लेक्जिब्लिटी के बल पर 1992 के जूनियर एशियाड में अपना उत्कृष्ट प्रदर्शन दिया। राजेश्वरी पिल्लई ने लगातार 8 वर्षों तक नेशनल रोप मलखांब में अपना वर्चस्व बनाए रखा। पल्लवी चेंबूरकर और जस्मिता म्हात्रे ने कई राष्ट्रीय स्वर्ण पदक जीते। ये सभी पवनपुत्र के प्रॉडक्ट थे, इसका हमें अभिमान है।

लड़कों में संजय जोशी (अब प्लास्टिक सर्जन के रूप में प्रसिद्ध) के साथ-साथ विकास पाथरकर (सफल उद्योगपति), प्रदीप पाटकर (मानसिक रोग विशेषज्ञ) राष्ट्रीय खिलाड़ी दिलीप रावते जैसे सैकड़ों खिलाड़ियों को पवनपुत्र व्यायाम मंदिर ने स्थापित किया और आगे चलकर इन लोगों ने क्षेत्र विशेष में अपनी पहचान बनाई। अगली बॅच से शेखर पाटील (न्यूजीलैंड निवासी और शिवछत्रपति पुरस्कार विजेता), हरेश तथा प्राची राणे (लंदन निवासी), अभिजीत आचवल और संदीप जोगळेकर जैसे कई खिलाडियों ने राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में अपने साथ-साथ श्रीपवनपुत्र का नाम भी रोशन किया। अपर्णा शिंदे और ऋषिकेष म्हात्रे (पवनपुत्र के विद्यार्थी) ने 'जंगल बुक' नाम से एक वर्ष के आगे के बच्चों के लिए जिमनास्टिक की कक्षाएं शुरू की, जो मूल रूप से नाना की संकल्पना थी। नाना ने कई साल पहले Kids Equipments को लेकर एक मुहिम चलाई थी। इन उपलब्धियों को देखते हुए आज मुझ जैसे खिलाड़ियों का सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है।

राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में विशेष उपलब्धियां हासिल करने वाले श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर के कुछ खिलाड़ियों की सूची -

- महेंद्र अनंत चेंबूरकर (जिम्नास्टिक) 1982 प्री एशियाड दिल्ली.
- स्व. मंजुश्री भांड- चिवटे (जिम्नास्टिक्स) 1982 प्री एशियाड दिल्ली.
- आशुतोष पोतनीस (जिम्नास्टिक) 1992 जूनियर एशियाड दिल्ली.
- कोमल पाटील (रिदमिक जिम्नास्टिक्स) 1992 जूनियर एशियाड दिल्ली.
- चंद्रशेखर पाटील (जिम्नास्टिक) कॉमन वेल्थ गेम्स.
- विजय सावंत (पावर लिफ्टिंग).
- मनोज मोरे (पावर लिफ्टिंग).
- अशोक कदम (पावर लिफ्टिंग).
- मीनल म्हात्रे (देशपांडे) अंतरराष्ट्रीय जिमनास्टिक रेफरी.
- मनीला - दिल्ली एशियाड और सियोल.
- प्रदीप चेंबूरकर – मलखांब- शिवछत्रपति पुरस्कार विजेता.
- मंदार म्हात्रे (कॉमन वेल्थ गेम्स- 2010 दिल्ली).
- प्रकाश रेवाळे (एफआईजी आर्टिस्टिक जिमनास्टिक रेफरी और एयूजी गाइड, प्रतियोगिता समिति के सदस्य (कॉमन वेल्थ गेम्स 2010 दिल्ली).
- सजीवन भास्करन– राष्ट्रीय स्तर का अर्जुन अवार्ड विजेता (1992).
- मीनल म्हात्रे ने जिमनास्टिक में पहली महिला जज (रेफरी) बनने का गौरव प्राप्त किया है।

एक ओर जहां जिम्नास्टिक, मलखांब और आसन जैसे खेलों में पवनपुत्र के कई खिलाड़ी अपना दबदबा कायम कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वेट ट्रेनिंग और पावर लिफ्टिंग में भी कुछ खिलाड़ी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में अपनी पहचान बना रहे थे। मनोज मोरे ने छह बार "स्ट्रॉन्ग मैन ऑफ इंडिया" का खिताब जीता। कॉमन वेल्थ गेम्स में बेंचप्रेस कॅटेगरी

में मनोज ने गोल्ड मेडल जीता। बसू राव और विजय सावंत ने राष्ट्रीय स्तर पर 'पावरलिफ्टिंग मास्टर्स' प्रतियोगिता में अपनी-अपनी श्रेणियों में जीत हासिल की। 1992 में, संजीवन भास्करन ने इंग्लैंड में अंतरराष्ट्रीय वेट ट्रेनिंग प्रतियोगिता में 'डेडलिफ्ट' श्रेणी में 255 किलो का वजन उठाकर 12 वर्षों से बरकरार विश्व रिकॉर्ड को तोड़ा और पवनपुत्र का परचम सात समुंदर पार लहराया। दिलचस्प बात यह है कि इस प्रतियोगिता के दौरान इंग्लैंड का तापमान-18 डिग्री सेल्सियस था। 52 किलोग्राम वजनी श्रेणी में यह विश्व रिकॉर्ड आज भी बरकरार है। रवि कसेळकर के मार्गदर्शन में संजीवन भास्करन ने राष्ट्रीय स्तर पर अर्जुन पुरस्कार जीतकर विशेष उपलब्धि हासिल की।

नियमित रूप से मलखांब और जिमनास्टिक का अभ्यास करने से भावनिक (भावनात्मक) बुद्धयांक (बुद्धिमत्ता) का विकास होता है। भावनिक बुद्धिमत्ता का मतलब अपनी और दूसरों की भावनाओं को ठीक से समझकर उसका समयोचित भान रखते हुए अपना यथोचित नियोजन करना होता है। भावनिक बुद्धयांक अधिक होने पर स्पर्धात्मक वातावरण में सकारात्मक लाभ होता है। इससे अपने लिए नए लक्ष्य को निर्धारित करने (जिला, राज्य, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताएं) और उस दृष्टि से लगातार काम करने की योजना बनाई जा सकती है। इससे अपने साथ दूसरों को भी प्रेरणा मिलती है। इतना ही नहीं, अगर कभी कोई मुश्किल की घड़ी आ जाती है तो, आसानी से रास्ता भी निकाला जा सकता हैं। मन में चल-बिचल होना या मन अस्थिर होना जैसी स्थिति प्रतियोगिता के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। भावनिक बुद्धिमत्ता के कारण विद्यार्थियों की प्रतियोगिता में भाग लेने की शक्ति, ऊर्जा और उत्साह मजबूत बनता है। स्पर्धात्मक वातावरण में प्रेरणा (Motivation) बड़ा ही महत्वपूर्ण घटक होता है। इससे जीवन में ध्येय निर्धारित करना, उनकी प्राथमिकता तय करना, लक्ष्य (गोल) ऊंचा रखना (राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय), प्रयत्नों की पराकाष्टा करना, मनोबल बनाए रखना, निराशाओं पर मात करना, आशावादी बने रहना आदि गुणों का विकास होता है।

कुछ शोध पत्रों में भावनिक बुद्धिमत्ता और योग के बीच सीधा संबंध निर्देशित किया गया है। दोनों हमारी भावनाओं को नियंत्रित करते हैं। आर्टिस्टिक खेल अर्थात जिम्नास्टिक्स और मलखांब के लिए अतिरिक्त मानसिक तैयारी (विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण) की आवश्यकता होती है। कई बार कड़ी मेहनत करने पर भी प्रतियोगिता में असफलता मिल सकती है। इससे निराशावादी स्वभाव के लोग खुद को दोषी मानने लग जाते हैं, परिणामतः उनके सकारात्मक पहलुओं पर निगेटिव प्रभाव पड़ने लगता है। वहीं दूसरी ओर आशावादी स्वभाव के खिलाड़ी विफलता के बावजूद अपने जीवन पर विपरीत प्रभाव करने वाले तत्वों पर मात करते हुए सफलता हासिल करते है और अपने व्यक्तिगत जीवन में भी गलतियों को सुधारकर आगे बढ़ते हैं। आशावादी स्पष्टीकरणात्मक शैली, नियमित अभ्यास तथा नियंत्रण क्षमता से विकसित की जा सकती है। इसके लिए विभिन्न स्तरों की प्रतियोगितायों में लगातार भाग लेते रहना चाहिए। किसी भी खिलाड़ी के कौशल्य को विकसित करने के लिए परफ़ॉर्मंस के दौरान स्मरणशक्ति, मानसिक फ्लेक्जिब्लिटी और आत्मनियंत्रण इन तीनों घटकों का एक दूसरे से योग्य तालमेल अपेक्षित होता है। ये वो मानसिक प्रक्रियाएं हैं जो हमें ध्यान केंद्रित करना (एकाग्रता) सिखाती हैं। छोटे बच्चों में इन कौशलों को विकसित करने की आंतरिक शक्ति शुरू से ही मौजूद रहती है, जिसे यथासमय अवसर (स्कोप) देने की जरूरत होती है। अनावश्यक मानसिक तनाव से बचना चाहिए, क्योंकि ये कौशल विकास एवं प्रतियोगिताओं के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। एक "खेल प्रणाली" के रूप में मलखांब और जिमनास्टिक इन सभी कौशलों को विकसित करने में सक्षम हैं, जिसे निरंतर अभ्यास करने से सहज एवं संभव बनाया जा सकता है।

विशेषज्ञों के अनुसार खेल एवं व्यायाम बच्चों के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बेहद उपयोगी होते हैं। इसका व्यावहारिक अनुप्रयोग ही उन्हें सफल बनाता है। इसे दो प्रकार से समझा जा सकता है -

1) विविध प्रकार की मानसिक स्थिति, अपने प्रदर्शन को किस तरह से प्रभावित करती है ?

2) खेल और व्यायाम में भाग लेने से शारीरिक और मानसिक विकास कैसे होता है ?

इसकी परख अनुभवों से और योग्य कोच के मार्गदर्शन से होती है। खेलों में सहभागिता करने से बच्चों का आत्मविश्वास तो बढ़ता ही है, साथ ही उनमें सामाजिक चेतना का ज्ञान भी विकसित होता है, जो जीवन में स्थायी तथा सकारात्मक प्रभाव छोड़ते हैं। इतना ही नहीं बच्चों की मानसिक सोच और व्यक्तित्व में भी निखार आता है। अपने भीतर के सुप्त कला गुणों एवं क्षमताओं का एहसास होता है। खेलों में सहभागिता केवल पुरस्कार प्राप्त करने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसमें निरंतरता बनाए रखना चाहिए, जो बच्चों के जीवन में कई तरह के पहलुओं को विकसित करती है। इसलिए स्कूली जीवन से ही मलखांब और जिमनास्टिक या अन्य खेलों का समावेश किया जाना चाहिए। छोटी उम्र में ग्रहण शक्ति भी अधिक होती है। इसका व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। स्कूलों में 'सभी के लिए शारीरिक शिक्षण' के साथ-साथ मलखांब और जिमनास्टिक को भी अनिवार्य रूप से सिखया जाना चाहिए।

जिमनास्टिक केवल एक खेल प्रकार ही नहीं है, बल्कि उसका अपना एक शास्त्र है। व्यापक स्तर पर समझकर इसे जीवन में अपनाया जाना चाहिए। अपने इस उद्देश्य की सफलता हेतु श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर हमेशा प्रयासरत और आग्रही रहा है। अधिकांश प्रगत राष्ट्रों में जिमनास्टिक को सभी खेलों का बेस माना गया है, इसी तर्ज पर हमारे देश में भी प्राथमिक स्तर से अर्थात स्कूली उम्र से ही 'जिम्नास्टिक्स फाउंडेशन प्रोग्राम' शुरू कर देना चाहिए। मलखांब, सूर्यनमस्कार और आसन ये सभी खेलों के बेस और शारीरिक व्यायाम के पूरक हैं। विशेषज्ञों का भी मानना है कि स्कूली शिक्षा में इनका समावेश बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हो सकता है। महेंद्र चेंबूरकर नियमित रूप से मलखांब का अभ्यास करते थे, इसलिए एशियाई

खेलों की प्रतियोगिता में जिमनास्टिक में उन्होंने क्वालीफाई किया। मलखांब का नियमित रूप से अभ्यास करने से शरीर में फ्लेक्जिब्लिटी (लचीलापन) विकसित होती है, मांसपेशियों की शक्ति बढ़ती है। संतुलन, लय और प्रस्तुति में ग्रेस आता है जो जिमनास्टिक के लिए काफी उपयोगी होते हैं। सूर्य नमस्कार और उपासना को सर्वांग सुंदर व्यायाम प्रकार माना गया है। नियमित रूप से सूर्य नमस्कार करने से शरीर के लगभग हर अंग का व्यायाम हो जाता है। सूर्य नमस्कार के दौरान सूर्य के बारह नामों का स्मरण करते हुए मंत्रोच्चार करने से मानसिक क्षमता का विकास होता है और शरीर स्वस्थ रहता है।

बच्चों की एकाग्रता, बुद्धिमता और कौशल्य क्षमता बढ़ाने के लिए जिमनास्टिक का समावेश स्कूली पाठ्यक्रमों में अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए, ऐसा मेरा भी निवेदन है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के आयु वर्ग के अनुसार जिमनास्टिक के अलग-अलग अभ्यास खंड (Level Training) उपलब्ध हैं। उदाहरण के तौर पर लेवल 7 से 10 की रचना ओलंपिक स्तर के स्पर्धात्मक दृष्टि से की गई है। उससे नीचे लेवल 0 से 06 तक की रचना, बड़ी संख्या में बच्चे जिमनास्टिक से जुड़ें, इस दृष्टि से की गई है। साधारणतः छह साल की उम्र से शुरू होने वाला यह खेल सफ़र ओलंपिक प्रतियोगिताओं में भाग लेने तक चलता है, जो 25 साल की उम्र में जाकर ठहरता है। एक सप्ताह में कितने घंटे और कितने सेशन्स इसके किए जाने चाहिए, इसका शेड्यूल उम्र के हिसाब से तैयार किया जाता है। तदनुसार, जिमनास्टिक से परिचय होने से लेकर अंतरराष्ट्रीय विकास तक का कार्यक्रम तैयार किया जाता है। बच्चों का चयन करते समय सामान्यतः आकलन शक्ति, शारीरिक एवं तकनीकी क्षमता का निरीक्षण किया जाता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भाग लेने की इच्छा रखने वाले जिमनास्ट इन्हीं तत्वों का अवलंबन करते हैं। एस.एस.सी. बोर्ड के तर्ज पर जिमनास्टिक के इन सभी पहलुओं को सभी स्कूलों के अभ्यासक्रम एवं पाठ्यक्रमों में समावेश हो, इस दिशा में श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर हमेशा प्रयासरत और आग्रही रहा है। दो साल की उम्र से ही जिमनास्टिक शुरू

करने के उद्देश्य से बच्चों के लिए विशेष उपकरण (Kids equipments) पवनपुत्र ने बहुत पहले ही तैयार कर लिया था। जब कई स्कूलों के हजारों विद्यार्थी जिमनास्टिक करना शुरू कर देंगे तो उनका मूल्यांकन (Evaluation) करते हुए उन्हें ओलंपिक स्तर तक ले जाना संभव हो पाएगा। इसके लिए विशेषज्ञों के माध्यम से स्वीकृत मानकों का निर्धारण करना होगा। बच्चों की क्षमता, योग्यता, उनका सकारात्मक पक्ष और कमजोर पक्ष (Strength and Weakness) आदि को तकनीकी कसौटी पर कसते हुए चयन प्रक्रिया की जानी चाहिए। इसका लाभ बच्चों के साथ प्रशिक्षकों को भी होगा। इसके अनुसार बच्चों को उचित मार्गदर्शन देना आसान हो जाएगा। चयन प्रक्रिया में व्यक्तिगत मूल्यांकन करते समय 1- जोड़ों (Joints) की हलचल और क्षमता 2- शारीरिक संरचना 3- संतुलन- स्थिर और गतिशीलता (Static and Dynamic) 4- लचीलापन (फ्लेक्जिब्लिटी) और विविध प्रकार की शारीरिक हलचल 5- कलात्मकता, सुंदरता और प्रस्तुतिकरण आदि बातों पर विचार किया जाता है। विदेशों में 'लेवल ट्रेनिंग' विषयक तत्वों का विचार ओलंपिक स्तर के जिम्नास्ट तैयार करने के लिए किया जाता है। क्या इसके लिए हम तैयार हैं ?

प्रदीप चेंबूरकर

(राष्ट्रीय स्वर्ण पदक विजेता एवं शिवछत्रपति पुरस्कार से सम्मानित)

संस्मरण- 3

मेरी यादों में बसा चेंबूर हाईस्कूल एवं श्रीपवनपुत्र व्यायाम मंदिर- दत्ताराम वाघे

महाराष्ट्र में कई स्कूल हैं, जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और अमीर हैं। लेकिन एक गौशाला की जगह में विद्यालय शुरू करके कालांतर में उसकी अपनी भव्य इमारत खड़ी करना, शून्य से ब्रह्मांड निर्माण करने जैसा सफर रहा है। बरसों पहले मुंबई के चेंबूर गांवठान में गौशाला की जगह में शुरू होने वाले इस विद्यालय का नाम है- चेंबूर एजुकेशन सोसाइटी द्वारा स्थापित 'चेंबूर हाईस्कूल', जिसका मैं पूर्व विद्यार्थी रह चुका हूँ।

मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं 1971-72 में चेंबूर के रिजर्व बैंक कॉलोनी में रहने आया था। कॉलोनी के आस-पास एफॅक, आदर्श, मुक्तानंद, म्युनिसिपालटी (नगर पालिका) और चेंबूर हाईस्कूल जैसे स्कूल थे। लेकिन ना जाने क्यों मेरे माता-पिता मुझे चेंबूर हाईस्कूल में ही दाखिला दिलाना चाहते थे। मगर वर्ष 1971-72 में मुझे चेंबूर हाईस्कूल में प्रवेश नहीं मिला, इसलिए मुझे सुभाषनगर स्थित म्युनिसिपालिटी (नगर पालिका) के स्कूल में प्रवेश लेना पड़ा। अगले वर्ष अर्थात छठी कक्षा में मुझे चेंबूर हाईस्कूल में प्रवेश मिल गया।

चेंबूर एजुकेशन सोसायटी द्वारा संचालित 'चेंबूर हाईस्कूल', का उस दौर में बड़ा नाम था। मुझे याद है उस समय स्कूल के संचालक माननीय श्री तांबे साहेब एवं माननीय श्री वि. कृ. टेम्बे साहब थे। विद्यालय के आस-पास का परिसर बड़ा मनोरम था। स्कूल के बगल में एक बड़ी पहाड़ी थी। उस पहाड़ी को खोदकर उसकी मिट्टी से छात्रों ने बड़े परिश्रम से स्कूल के सामने

की जगह को पाटकर उसे आउटडोर स्पोर्ट्स लायक बड़ा मैदान बनाया। इस काम में विद्यार्थियों के साथ-साथ स्कूल के शिक्षकों ने भी अपना श्रमदान दिया था।

समय के साथ, चेंबूर में धीरे-धीरे निवासियों की संख्या बढ़ती गई और चेंबूर का स्वरूप बदलने लगा। इससे विद्यालय का महत्व भी बढ़ता गया। विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या को देखते हुए संचालकों ने कक्षाओं को बढ़ाने का निर्णय लिया। स्कूल को एक मंजिल से दुमंजिला बनाने की योजना बनी और उसे पूरा करने के प्रयास शुरू हुए। प्रयोगशाला को बड़ा करना जरूरी था। 10वीं पास होने के बाद 11वीं और 12वीं कक्षा में प्रवेश के लिए विद्यार्थियों को चेंबूर से बाहर दूर किसी अन्य कॉलेज में जाना पड़ता था। इससे प्रवेश के लिए काफी खर्च करना पड़ता था। संचालकों ने एक बड़ा कदम उठाते हुए ग्यारहवीं और बारहवीं की कक्षाएं शुरू करने का निर्णय लिया। स्कूल और संचालकों के सामने अब बड़ा सवाल था कि इस काम के लिए आवश्यक फंड कैसे जुटाया जाए? लेकिन स्कूल के शिक्षकों की सटीक योजना के कारण यह संभव हो सका।

हमारा स्कूल इतना सम्पन्न नहीं था, बावजूद इसके स्कूल के मॅनेजमेंट ने फंड रेजिंग की योजना बनाई। इसके पहले स्कूल ने कभी किसी से आर्थिक योगदान नहीं लिया था। इस बार काम बड़ा था इसलिए डोनेशन के बगैर गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती थी। स्कूल की फीस भी कक्षा के अनुसार 5 से 10 रुपए के बीच और टर्म फीस केवल 10 रुपये थी। इतनी वाजिब फीस में हमारा स्कूल चलता था।

स्कूल का विस्तार दूसरी मंजिल तक करने की तैयारी शुरू हो गई। आर्थिक सहयोग के लिए लिए डोनेशन पावतियां भी छपवाई गईं। पहले तो ऐतिहासिक नाटकों का 'शो' आयोजित किया गया, बाद में षण्मुखानंद हॉल में महेश कुमार एंड पार्टी का ऑर्केस्ट्रा रखा गया। इस प्रकार से आवश्यक फंड जमा किया गया। निधि संकलन के इस काम में विद्यालय के किसी भी विद्यार्थी पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डाला गया था। यहां तक की

स्कूल में छुट्टियां भी घोषित नहीं की गई, ताकि लोग फंड इकट्ठा कर सकें। स्कूल के सभी शिक्षकों और छात्रों के श्रमदान से तथा श्री मराठे साहब द्वारा दिए गए आर्थिक सहयोग के बल पर स्कूल की दूसरी मंजिल बनकर तैयार हुई, यह बहुत बड़ी बात थी।

मराठे साहब द्वारा दिए गए आर्थिक सहयोग से जो निर्माण कार्य किया गया, उसमें एक सभागृह का भी समावेश था। अतः उस सभागृह को मराठे साहब का नाम दिया गया। विद्यालय में प्री-प्राइमरी स्कूल, प्राइमरी स्कूल और नाईट स्कूल चलाया जाता था। अर्थात एक आदर्श विद्यालय कैसा होना चाहिए, इसे हमारे संचालकों और शिक्षकों के कठोर परिश्रम एवं कल्पकता को देखकर निर्धारित किया जा सकता था।

प्री-प्राइमरी स्कूल – तब स्कूल के प्रधानाचार्य मा. श्री पाटील सर थे, जो एकदम सीधे सरल स्वभाव के थे। मराठी में कहें तो –"गोगल गाय, पोटात पाय।" स्कूल शुरू होने से पहले और स्कूल छूटने बाद माता-पिता घर में अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करें? अभिभावकों की अपनी जिम्मेदारियां क्या होनी चाहिए? बच्चों के उत्कर्ष के लिए अभिभावकों द्वारा क्या किया जाना चाहिए और क्या नहीं किया जाना चाहिए, इस बारे में विस्तार से वे मार्गदर्शन करते थे। साथ ही बच्चों के होमवर्क में अभिभावक बच्चों की मदद कैसे करें? इसके बारे में भी जानकारी देते थे। बच्चों को स्कूल भेज दिया, मतलब हमारी जिम्मेदारी खत्म, ऐसा पालकों को बिल्कुल नहीं समझना चाहिए। इस बारे में भी वो अभिभावकों को समझाते थे। स्कूल में जो बच्चे गरीब थे, उनसे फीस नहीं ली जाती थी। उनका निर्देश था कि कपड़े भले ही फटे हों मगर स्वच्छ होने चाहिए। वे सिर्फ उपदेश नहीं देते थे बल्कि आचरण में भी लाते थे। कभी किसी विद्यार्थी की नाक बह रही हो तो वो उसे तुरंत साफ करने का निर्देश देते थे, या वे खुद आगे बढ़कर साफ कर देते थे। इस तरह का समर्पित प्रधानाचार्य मैंने अपने जीवन में पहली बार देखा था। मुझे उनमें साक्षात दैवत्व भाव के दर्शन हुए। उनके बाद उन्हीं के आदर्शों का पालन श्रीमती दाभोळकर मॅडम ने भी किया।

प्राथमिक स्कूल – प्राथमिक स्कूल के आदरणीय श्री भ. मा. पंत सर भी उसूलों के पक्के थे। उनके बारे में सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि सर के जूतों की आवाज़ सुनते ही पूरा स्कूल शांत हो जाता था। उनके दौर में स्कूल में बड़ा सख्त अनुशासन हुआ करता था। यदि कोई छात्र एक दिन स्कूल नहीं आता तो, दूसरे दिन माता-पिता का पत्र आवश्यक होता था। तीन दिन नहीं आने पर उस विद्यार्थी के माता-पिता को स्कूल आना पड़ता था। यदि दैनंदिनी (डायरी) में तीन लेट मार्क हो जाते तो, उस विद्यार्थी को सीधे घर भेज दिया जाता था। पाठ्यपुस्तकों के लिए किसी खास स्कूल बॅग की आवश्यकता नहीं थी, मामूली कपड़े की थैली से भी काम चलाया जा सकता है, ऐसा उनका निर्देश था। इस तरह अनुशासन के पक्के पंत सर बाद में जवाहर विद्या भवन (आर.सी.एफ.) में प्रिंसिपल बनकर गये।

प्रधानाध्यापिका श्रीमती उषा नागले मॅडम बहुत मिलनसार और सहज स्वभाव की थीं। यदि किसी विद्यार्थी की कोई समस्या होती तो, वे उसका समाधान निश्चित रूप से करती थीं। किसी नए अध्यापक के पढ़ाने के तौर तरीके को लेकर यदि विद्यार्थियों की कोई शिकायत होती तो, मॅडम स्वयं कक्षा में आकर पाठ को पुनः समझाती थीं। उस शिक्षक को बताती थीं कि वे विषय को सरल शब्दों में समझाए ताकि आसानी से बच्चों की समझ में आ जाए। एक बार मैं अंग्रेजी की पुस्तक घर पर ही भूल गया था। जब मॅडम के ध्यान में यह बात आई तो उन्होंने मुझसे पूछा - किताब कहां है? मैंने झूठ बोल दिया कि किताब खो गई। "क्लास में किताब कैसे खो गई?" और फिर मुस्कुराते हुए वे बोलीं, "अरे, छोटे से बैग में एक किताब नहीं संभाल सकते तो कल पत्नी को कैसे संभालोगे?" शरमाकर मैंने सिर नीचे झुका लिया। उसके बाद बिना भूले रोज सभी विषयों की कांपी-किताबें टाइमटेबल के अनुसार मैं ले जाने लगा।

आदरणीय फाटक सर अंग्रेजी विषय को बहुत सरल भाषा में उदाहरण सहित समझाते थे। अंग्रेजी आसानी से कैसे सीखी जाए और बोली जाए, इस कला को वे बेहतर जानते थे और उसी तरह हमें समझाते भी

थे। उन्हें जब लगता कि बच्चे बोर हो रहे हैं, तो वे कोई कहानी सुनाते थे। एक बार उन्होंने हमें "चतुर दामाद" की कहानी सुनाई थी, जो आज भी मुझे याद है। उनके द्वारा सुनाई गई एक कहावत "गण्या गणितम पोळ्या करीतम्, ऐशीरे कैशि कंकण नैशि कंकण सापडे तुळशी पाशी।" मेरे कानों में आज भी गूंजती है। वैसे उनका मुझ पर पूरा ध्यान रहता था। जब उन्होंने देखा कि मैं क्लास में टेड़ा चलता हूँ, तो उन्होंने एक दिन मेरी ऐसी पिटाई की कि जिसे मैं आज तक नहीं भूल पाया। उस पिटाई के झटके ने मेरी जिंदगी की चाल को सीधा कर दिया, जो आज मेरे जीवन में काम आ रही है।

मा. श्री पंडित सर संस्कृत और गणित पढ़ाने में बहुत निपुण थे। दोनों विषयों को पढ़ाते समय मैंने कभी उन्हें क्लास में किताब खोलते नहीं देखा। कक्षा में प्रवेश करते ही वे बोलना शुरू कर देते थे और ब्लैकबोर्ड पर पेज नंबर, चैप्टर नंबर लिखकर गणित हल करने लग जाते थे। आज के दौर में इस तरह के शिक्षक मिलना कठिन है। यूनिफ़ॉर्म को लेकर भी स्कूल का अनुशासन उतना ही सख्त था। लड़कों की पैंट घुटने से चार अंगुल ऊपर और लड़कियों की स्कर्ट घुटने से चार अंगुल नीचे होनी चाहिए, ऐसा नियम था। अगर लड़कियां बालों में रिबन नहीं बांधती या उनके माथे पर बिंदी (कुमकुम) नहीं होती तो उन्हें तुरंत घर भेज दिया जाता था। कक्षा में हम सभी को सीधे बैठना होता था। गौशाला से विद्यालय का निर्माण और उसे मूर्त रूप देने में पंडित सर का बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान था।

श्रीमती सुळे मॅडम, श्रीमती पुजारी, श्रीमती सामंत, श्रीमती सांडू मॅडम और बर्वे सर, कारेकर, बरन्हाणपूरकर, देशपांडे, जाधव सर आदि सभी शिक्षक शांत और मिलनसार थे। इन सबकी पढ़ाने की शैली भी सरल और सहज थी।

श्रीमती कारखानीस, श्रीमती बापट, श्रीमती रंगारी मॅडम का अपना दबदबा था। अंग्रेजी और गणित पढ़ाते समय अंतिम बेंच पर बैठे विद्यार्थी तक आवाज पहुँच जाए और वह समझ जाए, ऐसी सरल और सहज भाषा में वे समझाती थीं। छमाही और वार्षिक परीक्षाओं में सी.आई.डी. की तरह वो

कड़ी नजर रखती थीं और नकल पकड़ने में माहिर थीं। मस्ती करने वाले विद्यार्थी भी उनके पीरियेड में शांति से बैठते थे।

आदरणीय श्री सुहास पाठारे सर (नाना) क्रीड़ा के क्षेत्र में मेरे गुरु थे। मुझे मलखांब सिखाने में उनका योगदान बहुत बड़ा था। इसी तरह इंटर-स्कूल प्रतियोगिताओं में लंगड़ी, खो-खो, मलखांब, वॉलीबॉल जैसे खेलों में मैंने अपने सिलेक्शन को हमेशा सार्थक सिद्ध किया। नाना के मार्गदर्शन में कई खेल प्रतियोगिताओं में भाग लेते हुए पुरस्कारों का हकदार बना। पवनपुत्र व्यायामशाला के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर श्री धनंजय चिवटे और मंजुश्री चिवटे ने जिम्नाशियम में अभूतपूर्व सफलता हासिल की, जिसका पूरा श्रेय नाना को जाता है।

मा. श्री डुम्बरे सर, पी.टी. का पीरियेड लेते थे। एक बार ऐसा हुआ कि पीटी का पीरियेड खत्म हो गया और हमें घंटी की आवाज सुनाई नहीं दी। अतः कक्षा में पहुंचने के लिए हमें देर हो गई। कक्षा में देर से आने की सज़ा तो मिलनी ही थी, इसलिए डुम्बरे सर स्कूल के मेन गेट के पास नायलॉन की रस्सी लेकर खड़े हो गये। गेट के पीछे से चपरासी बच्चों को अंदर ढकेलता और डुंबरे सर नायलॉन की रस्सी से बच्चों को मारने लगते। यह दृश्य मेरी मां ने देख लिया। मेरी मां तब मेरे छोटे भाई को प्री-प्राइमरी में छोड़ने आती थी। स्कूल के बाद जब मैं घर गया तो मेरी मां शांत बैठी थी। मैंने मां से पूछा, "क्या हुआ।" तब मां की आंखों में आंसू आ गए। मैंने पलटकर फिर पूछा, "क्या हुआ?" तब वो बोली "वो सर तुम लोगों को क्यों मार रहे थे?" मैंने कहा कि पिरीयेड खत्म होने की घंटी हमें सुनाई नहीं दी, इसलिए क्लास पहुंचने में हम सबको देर हो गई। सजा के तौर पर सबको मार पड़ी। "लेकिन बच्चों को कोई इस तरह से मारता है क्या? मार खाने के लिए हम माता-पिता तुम्हें स्कूल भेजते हैं क्या?" तब मैंने समझाया कि ऐसी गलती हम दुबारा ना करें इसलिए आईएएस तरह की सज़ा दी गई।

मेरे पसंदीदा शिक्षक - मा. श्री सुहास पाठारे (नाना) एवं श्रीमती पंडित मॅडम (हिंदी विषय)

मेरे पसंदीदा विद्यार्थी – राजन प्रधान, हेमंत बावस्कर, रवींद्र सावंत, संदीप पाटील, जयंत तांडेल, रचना रायकर, अनिता बर्वे, विजया जाधव, संध्या महाडिक आदि।

शिक्षा पूरी हो जाने के बाद जब स्कूल को अलविदा कहने का समय आया तो, मेरी स्थिति कुछ वैसी ही थी, जैसे मैंने स्कूल में अपना पहले दिन मैंने पहला कदम रखा था। दोनों स्थितियों में अंतर क्या था? जब मैं आया था, तब मन में भय था। जाते समय भक्ति थी। जब मैं आया था तब, मेरी पाटी कोरी थी। स्कूल से बिदा हुआ तो मेरा ज्ञानभंडार अनमोल रत्नों से भरा हुआ था। आते समय मैं मिट्टी का एक गोला था, जाते समय उस मिट्टी का सुंदर शिल्प बन गया था। एक मामूली कीड़े का रूपांतर सुंदर-सी तितली में हो गया था। ये कमाल मेरे स्कूल का था, मेरे गुरुओं का था, जिसे आजीवन मैं भूल नहीं पाया।

मैं यह कैसे कह सकता हूं कि स्कूल की वो इमारत सिर्फ सीमेंट, रेती और ईंटों से बने कमरों की थी ? वास्तव में वह तो एक पावन मंदिर था- साक्षात शारदादेवी का मंदिर....! मंदिर में घंटी होती है, क्या इसीलिए स्कूल में भी होती है? इस मंदिर के गर्भगृह में हमने कविताओं का घोष किया, संस्कृत के शब्दों का पठन किया, गिनती-पहाड़ों का आवर्तन किया...सब कुछ याद आ रहा है। याद आ रहा है, स्कूल में रोज गाया जाने वाला वह राष्ट्रगान और माँ शारदे की प्रार्थना ! 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का जाप करते हुए अनुष्ठान का पाठ शुरू होता था।

यही वह जगह थी, जहां मेरी मुलाकात संत ज्ञानेश्वर, चोखामेळा, पाडगांवकर, शांताबाई शेळके से हुई। यही वो चार दीवारें थीं, जिनके भीतर बैठकर मैंने देश दुनिया की यात्रा की। मेरी जिज्ञासाओं को पंख लगे, जिनके सहारे मैंने जीवन में उड़ान भरी। शंकाओं का निराकरण भी यहीं हुआ। अज्ञानता का अंधकार भी यहीं मिटा।

मैंने यहां सहजीवन का अनुभव किया। अपना सुख-दुख साझा किया। क्रोध-ईर्ष्या, झगड़ा-रगड़ा, यहां की शरारतें, नटखट जीवन, बचपन

की शरारतें आदि सब कुछ याद आ रहा है....। याद आ रहे हैं वो स्नेह सम्मेलन, नाटकों की तालिम, गायन की रिहर्सल, प्रदर्शनियों की तक्तियाँ, खेल महोत्सव, भाषण प्रतियोगिताएं,...उनमें जीतना...हारना आदि बहुत कुछ ! कुछ संभलना, कुछ बिगड़ना आदि सब याद आ रहा है। याद आ रही हैं शरारतें, शिक्षकों को परेशान करना, झूठ बोलना। कितना निरागस, निष्पाप, निस्वार्थ और निरूपद्रवी था वह जीवन...!

हम बड़े हो गए और ये सब ख़त्म हो गया। क्षितिज विस्तृत हो गए हैं, लेकिन उन क्षितिजों को हम खुली आंखों से देख सकें, ऐसी आंखें उसी स्कूल ने दीं। नदी की मछली जब समुद्र में जाती है तो, उसे कैसा महसूस होता है....ठीक उसी तरह का अनुभव मुझे आज हो रहा है। उस समुद्र में तैरने का आत्मविश्वास भी उसी स्कूल ने हमें दिया.....!

अपने उस पावन पवित्र स्कूल को हाथ जोड़कर वंदन करता हूँ।

शिवछत्रपति पुरस्कार से सम्मानित चेंबूर हाईस्कूल के विद्यार्थी / खिलाड़ी

प्रदीप चेंबूरकर – मलखांब- 1973-74
उल्हास कर्पे - मलखांब – 1974-75
महेंद्र चेंबूरकर – मलखांब – 1976-77
विनय वेसावकर – जिमनास्टिक – 1980-81
मंजूश्री चिवटे – जिमनास्टिक – 1983-84
निलाक्षी पुरव - जिमनास्टिक –
चंद्रशेखर पाटील – जिमनास्टिक – 1993-94
कुंदन रावते – जिमनास्टिक -
श्री सुहास पाठारे–क्रीड़ा कार्यकर्ता, स्पोर्ट्स जज, शिवछत्रपति पुरस्कार विजेता

-दत्ताराम गणपत वाघे
(भूतपूर्व विद्यार्थी, नवी मुंबई)

संस्मरण- 4

स्वस्थ संस्कारों की कुंजी – प्रतिभा सराफ

हमारे नाना अर्थात माननीय श्री सुहास पाठारे सर! जब मैं चेंबूर हाईस्कूल के कक्षा 5 वीं में पढ़ती थी, तब जून महीने में एक दिन पाठारे सर हमारी कक्षा में आए और उन्होंने हमें जिमनास्टिक के बारे में विस्तृत जानकारी दी। उस दिन 'जिमनास्टिक' शब्द मैंने पहली बार सुना और मन में जिज्ञसा होने लगी। इसके पहले मैंने इस बारे में कभी कुछ ना तो पढ़ा था, ना ही सुना था। शायद ये मेरा अज्ञान था। कुछ नया सीखने को मिलेगा, इस लालसा से मैं उत्साहित थी और बहुत खुश थी। मैंने अपनी मां से इस बारे में चर्चा की और अनुमति ली। अगले दिन स्कूल की छुट्टी के बाद, मैं अपनी कक्षा के कुछ छात्रों के साथ शाम को मैदान में पहुँच गई। पाठारे सर ने दस से पंद्रह विद्यार्थियों को जिमनास्टिक के बारे में प्रशिक्षण देना शुरू किया। काटवील, बॅक वॉकर, फ्रंट वॉकर, स्प्लिट जैसी कुछ तकनीकी एक्सरसाइज सीखना मेरे लिए आनंददायी था। जब कभी मैं कुछ नया सीखती, तो घर आकर सबसे पहले उसे अपने माता-पिता को दिखाती और अपनी बहनों के सामने उसे प्रस्तुत करती। इस बहाने मैं बहनों को रिझाती, उन पर रोब जमाती। इसका अपना अलग आनंद था। इससे घर में जब भी कोई मेहमान या रिश्तेदार आते, तो माता-पिता कहते, "कोई कविता सुनाओ, कोई गीत गाओ, नाचकर दिखाओ, आदि।" जिमनास्टिक शुरू करने के बाद अब नई फरमाइश होने लगी, "चलो अब काटवील करके दिखाओ, स्प्लिट करके दिखाओ, आदि। सबकी सराहना पाकर मेरा

उत्साह बढ़ जाता था। इस बीच, सर ने हममें से कुछ लोगों का चयन 'राज्य स्तरीय जिम्नास्टिक प्रतियोगिता' के लिए किया था। चूंकि प्रतियोगिता मुंबई में ही होने वाली थी, इसलिए उसमें सहभागी होने की अनुमति मुझे घर से मिल गई। कुछ दिनों में ही हम लोग पाठारे सर के 'पवनपुत्र व्यायाम मंदिर' में सक्रिय सदस्य हो गए। मेरी कक्षा के धनंजय चिवटे, चेतन रायकर, अंजली रावते इत्यादि भी मेरे साथ थे। वहां जाने के बाद मेरी मुलाकात ज्योति रावते और धनंजय की छोटी बहन मंजूश्री चिवटे से हुई, जो तीसरी कक्षा में पढ़ती थी। अब हम लोग नियमित रूप से 'पवनपुत्र' जाने लगे थे। हम वहां ऐसे पेश आते, जैसे वह हमारा दूसरा घर हो। अंजली के मामा और मौसी चेंबूरकर परिवार से थे। हमसे थोड़े बड़े विद्यार्थी भी पाठारे सर के साथ मिलकर कभी-कभी हमें जिमनास्टिक सिखाते थे। यहां आने के बाद हम बीम, हॉर्स इत्यादि सीखने लगे।

पाठारे सर का उत्साह हम बच्चों के लिए प्रेरणादायी थ। कभी-कभी जब हमारा मूड नहीं होता, तो हम थक जाने का बहाना बनाते थे। मगर सर का जोश देखकर हम उनके सामने शर्मिंदा हो जाते थे। यदि कभी हम थोड़ी भी शिकायत करते कि हमारा पैर दुख रहा है या हाथ में दर्द हो रहा है, तो सर कहते, "चलो अपने-अपने हाथ, पैर निकालकर सामने लगी खूंटी में टांग दो और तैयार हो जाओ।" उनका यह वाक्य सुनते ही हम अपने आलस और बहानेबाजी को भूलकर अभ्यास करने लग जाते। यहां तक कि यदि हमें 'कमान' या 'शीर्षासन' करना होता था, तो सर हमारे बगल में खड़े हो जाते थे, जिससे हमें आत्मिक आधार मिलता था और हम अधिक आत्मविश्वास के साथ जिमनास्टिक करने लग जाते थे।

जब प्रतियोगिता होती तब हम देर तक अभ्यास करते थे। एक बार अभ्यास करने के बाद घर पहुंची तो कुछ देर हो गई थी। पिताजी नौकरी के सिलसिले में घर से दूर किसी दूसरे जिले में रहते थे। देर हो गई, इसलिए मेरी मां ने तुरंत मेरा जिमनास्टिक बंद करा दिया। जैसे ही सर को इसकी जानकारी हुई, वे स्वयं मेरे घर आए और मेरी मां को समझाते हुए उसे

आश्वासन दिया कि यदि इसके बाद जब भी कभी देर होगी, तो वे स्वयं उसे घर तक छोड़ने आएंगे। इतना सुनने के बाद मेरी मां ने मुझे फिर से जिमनास्टिक्स जाने की इजाजत दे दी। पाठारे सर ने ना केवल आश्वासन दिया, बल्कि उसका पालन भी किया। उस दौर में हमने कुछ प्रतियोगिताओं में भाग लिया, जिससे हमारा आत्मविश्वास बढ़ा और हमें नई चीजें सीखने का मौका मिला, साथ ही सफलताएं भी मिली। उन उपलब्धियों को याद करते हुए आज भी सीना गर्व से तन जाता है, वहीं दूसरी ओर आंखें नम भी हो जाती हैं। जिमनास्टिक्स के दौरान यूनिफ़ॉर्म के रूप में हमें हाफ पैंट (शॉर्ट्स), टी-शर्ट पहनना पड़ता था, जो मेरी मां को बिल्कुल पसंद नहीं था। इसका मतलब ये नहीं था कि मां संकुचित विचारों वाली थी। बल्कि उस दौर में सुरक्षा की दृष्टि से अधिकांश माताओं की सोच ऐसी ही होती थी। तब चेंबूर आज की तरह विकसित नहीं था। इस बीच एक राज्य स्तरीय प्रतियोगिता के लिए मेरा चयन हुआ। इसके लिए मैंने काफी अभ्यास भी किया था। लेकिन यह प्रतियोगिता मुंबई से बाहर थी। इसके लिए मुझे तीन दिन बाहर जाना था। जैसे ही इस बात की सूचना मां को मिली उसने अनुमति देने से इनकार कर दिया। इसके बाद तो मेरी जिमनास्टिक लगभग बंद ही हो गई, क्योंकि तब तक मैं दसवीं कक्षा में पहुंच चुकी थी। मुझे बोर्ड की परीक्षा देनी थी। इसके चलते मुझे अपने सारे खेल बंद करने पड़े।

आज भी पाठारे सर जब मिलते हैं तो ऐसा महसूस होता है, जैसे मैं अपने परिवार के किसी करीबी सदस्य से मिल रही हूँ। पाठारे सर ने न केवल हमें जिमनास्टिक जैसा खेल सिखाया, बल्कि यह गुरुमंत्र भी दिया कि जीवन में मुश्किलों के दौर से गुजरते वक्त आत्मविश्वास के साथ उसका सामना करना चाहिए। 'सतत प्रयास करते रहो, सफलता एक दिन अवश्य मिलेगी।' यह संदेश भी उन्होंने दिया। जिमनास्टिक और मलखांब जैसे मिशन को उन्होंने उस दौर में प्रारंभ किया था, जब मुंबई जैसे बड़े शहर में इसके बारे में लोगों को कोई खास जानकारी नहीं थी। बहरहाल एम.एस.सी. (फिजिक्स) तक की शिक्षा पूरी कर लेने के बाद, जीवन में मुझे जब कुछ

फुरसत मिली, तब सबसे पहले मैंने योगा क्लास में दाखिला लिया। योगा कहीं ना कहीं जिमनास्टिक के करीब है, ऐसा मुझे लगता है। उस दिन से लेकर आज तक मैं पूरे मन से योगाभ्यास कर रही हूँ और अपने गुरु पाठारे सर को याद भी करती हूँ। राज्य स्तर, राष्ट्रीय स्तर ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी पाठारे सर के कई विद्यार्थियों ने देश का नाम रोशन किया है। समर्पित भाव से उनके द्वारा किए गए काम के लिए उन्हें कई पुरस्कारों से नवाजा भी गया है, यह हमारे लिए अभिमान का विषय है। आज भी एडवोकेट शरद भोसले सर, मा. देवदत्त म्हात्रे और उनकी टीम पाठारे सर द्वारा शुरू की गई 'जिम्नास्टिक की धुरी' को आगे बढ़ा रहे हैं, जिससे भविष्य में एक स्वस्थ पीढ़ी की निर्मिति हो सके, यह फख्र का विषय है।

जिमनास्टिक्स केवल एक 'खेल प्रकार' ही नहीं बल्कि स्वस्थ संस्कारों की कुंजी है। आज मैं और मेरे जैसे अनगिनत छात्र पाठारे सर के स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए मनोकामना कर रहे हैं।

प्रतिभा सराफ़
(वरिष्ठ साहित्यकार)

GOVT. OF INDIA NATIONAL SPORTS POLICY - 2025

FILE Enclosed separately